₹ १००/- वार्षिक

दिव्य जीवन

शास्त्र अनन्त हैं। जानने को बहुत-कुछ है। समय अल्प है। बाधाएँ बहुत हैं। जिस तरह हंस जल तथा दूध के मिश्रण में से केवल दूध को ही ग्रहण करता है, उसी भाँति आपको शाश्वत सार-तत्त्व ही ग्रहण करना चाहिए। वह सार वस्तु प्रेम अथवा भक्ति है। इस सार वस्तु का पान कीजिए तथा शान्ति एवं अमृतत्व के शाश्वत धाम को प्राप्त कीजिए।

—स्वामी शिवानन्द

अप्रैल - अगस्त २०२०

विश्व–प्रार्थना

हे स्नेह और करुणा के आराध्य देव!
तुम्हें नमस्कार है, नमस्कार है।
तुम सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान् और सर्वज्ञ हो।
तुम सच्चिदानन्दघन हो।
तुम सबके अन्तर्वासी हो।

हमें उदारता, समदर्शिता और मन का समत्व प्रदान करो।
श्रद्धा, भक्ति और प्रज्ञा से कृतार्थ करो।
हमें आध्यात्मिक अन्त:शक्ति का वर दो,
जिससे हम वासनाओं का दमन कर मनोजय को प्राप्त हों।
हम अहंकार, काम, लोभ, घृणा, क्रोध और द्वेष से रहित हों।
हमारा हृदय दिव्य गुणों से परिपूरित करो।

हम सब नाम–रूपों में तुम्हारा दर्शन करें।
तुम्हारी अर्चना के ही रूप में इन नाम–रूपों की सेवा करें।
सदा तुम्हारा ही स्मरण करें।
सदा तुम्हारी ही महिमा का गान करें।
तुम्हारा ही कलिकल्मषहारी नाम हमारे अधर–पुट पर हो।
सदा हम तुममें ही निवास करें।

—स्वामी शिवानन्द

समदृष्टि रखिए

सभी के प्रति समदृष्टि रखिए। गपशप का त्याग कीजिए। ज्ञानी बनना सीखिए। ईश्वर के नाम में अटूट विश्वास रखिए, उसके नाम का गायन कीजिए तथा उसके अस्तित्व का सर्वत्र अनुभव कीजिए।

कठिनाइयों से विचलित न होइए। धैर्य से उन्हें सहन कीजिए। मन को ईश्वर की ओर मोड़िए। आध्यात्मिक सिंह की तरह चलिए। कामना के पाश को तोड़ कर छिन्न–भिन्न कर डालिए। करुणा, शान्ति, क्षमा, सहिष्णुता आदि दैवी सम्पत् का विकास कीजिए। आप निश्चय ही परम ज्ञान तथा आनन्द प्राप्त करेंगे।

सर्वशक्तिमान् ईश्वर से उसकी कृपा के लिए हार्दिक प्रार्थना कीजिए। सांसारिक जीवन की परम्परागत विभिन्नताओं से ऊपर उठिए। ज्ञान–सूर्य के उदय के द्वारा अविद्या के अन्धकार को दूर कीजिए। ईश्वर के प्रति अशेष तथा पूर्ण आत्मार्पण कीजिए। आप शान्ति का उपभोग करेंगे।

—स्वामी शिवानन्द

दिव्य जीवन

Vol. XXXI	अप्रैल – अगस्त २०२०	No. 1

उपनिषद्–सुधा बिन्दु

मृत्युप्रोक्तां नचिकेतोऽथ लब्ध्वा विद्यामेतां

योगविधिं च कृत्स्नम् ।

ब्रह्मप्राप्तो विरजोऽभूद्विमृत्युरन्योऽप्येवं यो विदध्यात्ममेव ।।

(कठोपनिषद् : २/३/१८)

मृत्यु (यम देवता) द्वारा कही गयी इस विद्या एवं सम्पूर्ण योग विधि को जान कर नचिकेता ब्रह्मभाव को प्राप्त हो गया, विरज (धर्माधर्मशून्य) तथा मृत्युहीन हो गया। अन्य कोई भी जो अध्यात्म तत्त्व को इस प्रकार जानेगा, वह भी वैसा ही हो जायेगा अर्थात् विरज होकर, ब्रह्मप्राप्ति द्वारा मृत्युहीन हो जायेगा।

(पूर्व-अंक से आगे)

महागुरुवर्णमातृकास्तोत्रम्

MAHAGURU-VARNA-MATRIKASTOTRAM

(ज्ञानभास्कर महामहोपाध्याय श्री एस. गोपाल शास्त्री)

ओंकारात्मकमप्रमेयममलं ब्रह्माद्वयं संसृते-
रोघावेगनियन्त्रणाय सततं ध्यायन्तमोजोनिधिम्।
औषध्याढ्यकलाधरस्य कलया भ्राजिष्णुमूर्जस्वलम्
ओंमाध्वीमधुरास्यपद्ममतुलं श्रीसद्गुरुं भावये ।।९।।

९. मैं अतुलनीय महिमान्वित श्री गुरुदेव की भावपूर्वक आराधना करता हूँ जो भवसागर के तीव्र धारा-वेग पर नियन्त्रण हेतु अद्वय, अप्रमेय, ओंकारस्वरूप, परमपावन परब्रह्म तत्त्व का सतत ध्यान करते हैं, जो ओजनिधि हैं, भगवान् शिव की दिव्य रश्मि से दीप्तिमन्त हैं तथा जिनका मुखकमल प्रणवध्वनि की मधु से अतीव मधुर हो गया है।

औदार्यादिगुणोज्ज्वलं परशिवानन्दं चिदम्भोनिधिम्
औद्धत्यान्धकदैत्यदर्पदमनं दीनानुकम्पाम्बुदम्।
अकांधिष्ठितसर्वमङ्गलमगावासप्रियं गङ्गया
भ्राजत्कं द्विजराजसेव्यमतुलप्रज्ञं भजे सद्गुरुम्।।१०।।

१०. जो उदारता, विशालहृदयता आदि सद्गुणों से सुसम्पन्न हैं, परम शुभता एवं आनन्द के स्वरूप हैं, दिव्य ज्ञान के सागर हैं, जिन्होंने अभिमानरूपी दैत्य का दर्पदलन किया है, जो समस्त ऐश्वर्यसम्पन्न हैं, दीनजनों पर सदैव अपनी असीम अनुकम्पा की वृष्टि करते हैं, जिन्हें पर्वतों के मध्य पावन गंगा के तट पर वास करना अत्यन्त प्रियकर है तथा जो साधकवृन्द द्वारा नित्य वन्दित-आराधित हैं, उन अनुपम प्रज्ञायुक्त श्री गुरुदेव की मैं श्रद्धापूर्वक वन्दना करता हूँ ।

(क्रमशः)

(अनुवादिका : स्वामी गुरुवत्सलानन्द माता जी)

श्री कृष्ण जन्माष्टमी सन्देश

प्रत्येक कर्म योग-पथ का एक सोपान है[१]

(सद्गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज)

जब सम्पूर्ण वातावरण में भय, अनिश्चितता एवं तनाव के बादल छाये रहते हैं तथा मनुष्य का जीवन वासना, लोभ एवं घृणा द्वारा संचालित होता है, ऐसे विकट समय में श्रीमद्भगवद्गीता का सन्देश आशा, प्रेरणा एवं उत्साह की एक किरण बनकर निराशा के अन्धकार को चीर डालता है। यह सन्देश जीवन के आध्यात्मिक मूल्यों तथा अहंकार एवं स्वार्थ रहित उचित दृष्टिकोण पर आधारित है।

यह अनासक्ति, आत्मा की अमरता एवं सर्वव्यापकता, दिव्य ज्ञान, भगवद्-भक्ति, इन्द्रियों एवं मन पर नियन्त्रण तथा निःस्वार्थ कर्म का सन्देश है। यह सन्देश जीवन के उस वास्तविक आदर्श को प्रस्तुत करता है जो मनुष्य के सर्वांगीण एवं समग्र विकास में सहायक है। इस आदर्श की अनुपालना महानतम योग है तथा प्रत्येक मनुष्य का उच्चतम कर्तव्य है।

उचित दृष्टिकोण

शरीर नाशवान् है, मन अपूर्ण है तथा इच्छाओं और वासनाओं का समूह है, इन्द्रियों की क्षमता सीमित है, समस्त दृश्य वस्तु-पदार्थ क्षणभंगुर हैं; केवल आत्म तत्त्व वास्तविक, शाश्वत तथा समस्त द्वन्द्वों से मुक्त है। यह जानकर मनुष्य को शरीर, मन, इन्द्रियों तथा संसार के वस्तु-पदार्थों के प्रति आसक्त नहीं होना चाहिए।

जीवन दिव्य आराधना की एक प्रक्रिया है। यह अन्योन्याश्रित है। परमपिता परमात्मा ही सबमें वास करते हैं, अतः मनुष्यों को एक दूसरे से घृणा नहीं करनी चाहिए, एक दूसरे को चोट नहीं पहुँचानी चाहिए तथा एक दूसरे के बीच अहंकार एवं दम्भ की दीवार नहीं खड़ी करनी चाहिए। जब मनुष्य के मन में आत्मा की सर्वव्यापकता के प्रति जाग्रति उत्पन्न होती है, तब उसमें स्वार्थ, लोभ एवं पाखण्ड नहीं रह सकते हैं। वह सबके प्रति प्रेम, मैत्री, करुणा एवं सेवा के भाव से पूर्ण हो जाता है। प्रत्येक मनुष्य को इस प्रकार के वास्तविक बोध से सम्पन्न होने का प्रयास करना चाहिए।

कर्म अपरिहार्य है

''मनुष्य कर्मों का त्याग करके मुक्ति एवं परिपूर्णता नहीं प्राप्त कर सकता है। वस्तुतः कोई भी मनुष्य एक क्षण के लिए भी कर्म किये बिना नहीं रह सकता है। प्रकृतिजन्य त्रिगुणों (सत्त्व, रज एवं तम) के अधीन हो मनुष्य कर्म करने को विवश होता है।'' जब कर्म अपरिहार्य है, उसका त्याग नहीं किया जा सकता है तो श्रीमद्भगवद्गीता अनासक्त एवं निःस्वार्थ भाव से कर्म करने का सन्देश देती है। मनुष्य को फलाकांक्षा एवं कर्तापन का त्याग करके स्वयं को भगवान् का एक उपकरण मानते हुए अपने कर्तव्य कर्म करने चाहिए। कर्मफल भगवान् के हाथ में है। अपूर्ण जगत् से इसकी आशा करने का परिणाम दुःख एवं निराशा ही होगा।

''जो मन द्वारा इन्द्रियों को नियन्त्रित करके अनासक्त भाव से कर्म योग का अभ्यास करता है, वह श्रेष्ठ है। उचित कर्म करें क्योंकि कर्म अकर्म से श्रेष्ठ है। अकर्मण्यता से तो शरीर का निर्वाह भी असम्भव हो

१. द डिवाइन लाइफ १९५८ में प्रकाशित आलेख का अनुवाद

जाएगा।'' अतः जब कर्म करना अपरिहार्य है, तो जीवन के मूल्यों के बोध एवं उचित दृष्टिकोण से सम्पन्न होकर अन्य मनुष्यों के कल्याण के उद्देश्य से उचित कर्म करने चाहिए।

कर्म योग

कर्म योग अन्यों की निःस्वार्थ सेवा मात्र नहीं है। मनुष्य का स्वभाव स्वार्थपूर्ण एवं हृदय संकीर्ण होने के कारण पीड़ितों एवं जरूरतमन्दों की सेवा पर बल दिया गया है। वास्तव में यह महत्त्वपूर्ण है। परन्तु इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण हैं - मनुष्य के दैनिक जीवन का स्वरूप, उसके विचार, उद्देश्य, आकांक्षाएँ, कार्य करने का तरीका, उसका स्वयं के प्रति तथा सम्बन्धियों एवं अन्य जनों के प्रति व्यवहार। जब इन सबका उचित ज्ञान, आत्म-नियन्त्रण, अनासक्ति एवं निःस्वार्थता के अभ्यास द्वारा योग में रूपान्तरण होता है, तभी मनुष्य को वास्तविक कर्मयोगी कहा जा सकता है।

प्रत्येक मनुष्य से कर्मयोगी बनने की अपेक्षा की जाती है चाहे वह किसी भी परिस्थिति में हो, क्योंकि कर्म योग ही समस्त दुःख, कष्ट, चिन्ता, भय एवं संघर्ष से मुक्त होने का एकमात्र मार्ग है। यदि मनुष्य यह अनुभव करता है कि वह भगवान् का एक उपकरण, एक प्रतिनिधि है, तो वह किसी प्रकार के संघर्ष, मतभेद एवं कलह का कारण नहीं बन सकता है। परन्तु ऐसा अनुभव करने का अर्थ यह नहीं है कि वह स्वयं को श्रेष्ठ मानकर अन्यों पर शासन करे अपितु इसका वास्तविक अभिप्राय यह है कि वह स्वयं को भगवान् का एक विनम्र, कर्तव्यनिष्ठ एवं अनासक्त प्रतिनिधि मानकर मैत्री एवं बन्धुत्व के भाव के साथ कर्म करे। जब कोई मनुष्य स्वयं अत्यधिक स्वार्थी, अहंकारी, दम्भी, लोभी, लालची एवं हठी होता है, तब उसकी ही छवि एक द्वेषपूर्ण प्रतिक्रिया के रूप में अन्यों में प्रतिबिम्बित होती है। अन्यथा पारस्परिक घृणा, क्रोध, ईर्ष्या एवं तनाव का कोई कारण नहीं है।

निम्न स्वभाव पर विजय

''अन्तरात्मा इच्छुक है, परन्तु देह दुर्बल है'' (The spirit is willing, but the flesh is weak.) प्रत्येक मनुष्य जानता है कि अन्य मनुष्यों से घृणा करना, उन्हें चोट पहुँचाना, हिंसक तथा स्वार्थी होना अनुचित है परन्तु मनुष्य का निम्न स्वभाव इतना प्रबल एवं शक्तिशाली होता है कि वह अपनी समस्त शुभ भावनाओं एवं उच्च आदर्शवाद के बावजूद इसके अधीन हो अनुचित कार्य करता है। सतत साधना के द्वारा मन एवं इन्द्रियों को नियन्त्रित, संकल्प शक्ति को सुदृढ़, हृदय को पवित्र तथा निम्न स्वभाव को परिष्कृत किया जाना चाहिए। तभी अन्तरात्मा की मानवीय दुर्बलताओं पर विजय हो सकती है। कर्म योग का प्रारम्भ मनुष्य के स्वभाव के शुद्धिकरण-पवित्रीकरण से होता है। इसमें समस्त आध्यात्मिक प्रक्रियाएँ समाहित हैं। मन का समत्व योग है। अनासक्ति योग है। सबमें भगवान् के दर्शन करना योग है। सबमें विराजमान भगवान् की सेवा करना योग है। सत्य, अहिंसा एवं ब्रह्मचर्य का पालन करना योग है। फलाकांक्षा एवं आसक्ति रहित होकर अपने कर्तव्य का पालन करना योग है। इच्छाशून्यता योग है। सदाचार के पथ पर चलना योग है। उचित ज्ञान के साथ किया गया प्रत्येक कर्म योग-मार्ग का एक सोपान है।

आप सब श्रीमद्भगवद्गीता के इस सन्देश को आत्मसात् करें तथा अपने दिन-प्रतिदिन के व्यावहारिक जीवन में क्रियान्वित करें। भगवान् श्री कृष्ण के आशीर्वाद आप सब पर हों।

(अनुवादिका : स्वामी गुरुवत्सलानन्द माता जी)

गुरु पूर्णिमा सन्देश

सत्य के सहज ज्ञान से सम्पन्न महापुरुष[१]

(सद्गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज)

सत्यान्वेषी साधकवृन्द!

समस्त मनुष्यों में अपने से श्रेष्ठ एवं उच्च जनों से सहायता प्राप्त करने एवं ज्ञान का प्रकाश प्राप्त करने की आकांक्षा जन्मतः होती है। स्वयं के उच्चादर्शों को प्राप्त करने की अक्षमता, इस अक्षमता से उत्पन्न पीड़ा तथा श्रेष्ठ-उच्च शक्तियों से सम्पन्न महापुरुषों के अस्तित्व का ज्ञान मनुष्यों को उन महापुरुषों के चरणों का आश्रय लेने हेतु प्रेरित करते हैं जो उनके उत्थान-उद्धार में सक्षम हैं। यह विश्व स्वयं के अभाव की पूर्ति हेतु अन्यों पर निर्भरता का ही दृश्य प्रस्तुत करता है। भगवान् के प्रति प्रेम से अभिप्राय उन परम तत्त्व की प्राप्ति की, पूर्णत्व प्राप्ति की तीव्र आकांक्षा है। यह प्राप्ति उन सबके लिए सरल नहीं है जो इसकी इच्छा करते हैं।

साधक के अन्तरतम में ही पूर्णत्व का केन्द्र है अतः इस पूर्णत्व, जो स्वयं भगवान् हैं, आत्मा है, के अनुभव में कठिनाई मालूम होती है। परम सत्य एवं पूर्णत्व को प्राप्त करने का रहस्य उन व्यक्तियों को ज्ञात नहीं होता है जो बुद्धि के माध्यम से इसे जानने का प्रयास करते हैं अपितु यह उन्हें ज्ञात होता है जो अपनी अन्तःप्रज्ञा से, सहज ज्ञान से सत्य का एक बाह्य वस्तु के रूप में नहीं वरन् स्वयं के अस्तित्व के केन्द्र के रूप में अनुभव करते हैं। उन्हें ही तत्त्वद्रष्टा तथा ब्रह्मनिष्ठ ऋषि कहा जाता है, ये महापुरुष अपनी दृष्टि, स्पर्श अथवा शब्द से साधक में आध्यात्मिक चेतना का संचार कर सकते हैं। ये गुरु हैं जो मानवता को परम सत्य का ज्ञान प्रदान करते हैं तथा भगवदीय चेतना की वृष्टि करते हैं। महर्षि पतञ्जलि कहते हैं कि भगवान् स्वयं ही महानतम-श्रेष्ठतम गुरु हैं क्योंकि वे सर्वाधिक प्राचीन हैं, सर्वव्यापक हैं तथा सर्वज्ञता के बीज स्वरूप होने के कारण समस्त गुरुओं के शाश्वत गुरु हैं। अतः भगवान् के प्रति समर्पण से अभिप्राय ज्ञान के उद्गम, शक्ति के स्रोत, सृष्टि के स्वामी की शरण ग्रहण करना है।

गुरु मानव व्यक्तित्व नहीं हैं। गुरु मानव-व्यक्तित्व के माध्यम से विभासित होने वाली दिव्य, शाश्वत सत्ता है। पंचभौतिक-नाशवान् शरीर को गुरु नहीं समझना चाहिए। एकमेव अद्वितीय परब्रह्म तत्त्व ही वास्तविक गुरु है जो स्वयं को अपनी इच्छानुसार विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त करते हैं। मनुष्य एक अन्य मनुष्य से ही सीख सकता है अत: भगवान् स्वयं मनुष्य शरीर के माध्यम से ही मानव को ज्ञान प्रदान करते हैं। गुरु का शरीर भगवान् के परम ज्योति स्वरूप की आराधना करने का एक अवसर है, एक माध्यम है। गुरु का मानवीय पक्ष महत्त्वपूर्ण नहीं है, अपितु उनमें अन्तर्निहित अदृश्य आत्मतत्त्व, सर्वव्यापक सत्ता ही वास्तविक गुरु है। जब हम भगवान् से प्रार्थना करते हैं, तो हम किसी देहधारी से प्रार्थना नहीं करते हैं। जब एक साधक गुरु का आश्रय ग्रहण करता है, तो वह किसी भौतिक रूप का आश्रय नहीं लेता है। गुरु में जीवन, प्रकाश एवं आनन्द के अधिष्ठान उस परम चैतन्य का ही दर्शन करना चाहिए जो जगत् के तुच्छ वैभव से परे है। उपनिषद् उद्घोषित करते हैं, ''हे सौम्य! इस लक्ष्य को प्राप्त करो।'' यही ध्यान एवं भक्ति का उद्देश्य है। यही

१. द डिवाइन लाइफ १९४९ में प्रकाशित आलेख का अनुवाद

परम तत्त्व गुरु एवं उद्धारक है, आश्रय एवं लक्ष्य है। भगवान् श्री कृष्ण कहते हैं, ''मेरे वास्तविक स्वरूप को जानिए।'' वे स्वयं स्पष्ट करते हैं कि उनकी देह अथवा रूप को शाश्वत तत्त्व नहीं समझना है। गुरु भगवान् हैं, भगवान् गुरु हैं। श्वेताश्वतर उपनिषद् में कहा गया है कि उस उच्चमना साधक के समक्ष सत्य स्वयं प्रकट होता है जो भगवान् एवं गुरु को दो भिन्न तत्त्व नहीं मानता है।

गुरु एवं शिष्य का पवित्र सम्बन्ध अत्यन्त प्राचीन सम्बन्ध है। वैदिक काल से ही साधक द्वारा ब्रह्मश्रोत्रिय एवं ब्रह्मनिष्ठ गुरु की शरण ग्रहण करने की आवश्यकता पर बल दिया गया है। मुण्डक उपनिषद् में वर्णित है, ''एक विवेकशील साधक को कर्म से बँधे जगत् की निरर्थकता को जानकर इससे विरक्त होना चाहिए। शाश्वत तत्त्व की प्राप्ति कर्म द्वारा नहीं हो सकती है। तत्त्व ज्ञान की प्राप्ति हेतु साधक को एक श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरु की शरण में जाना चाहिए।''

गुरु वस्तुत: शिष्य को ऐसा कुछ प्रदान नहीं करते हैं जो उसके पास पूर्वत: नहीं है, अपितु वे उसके अज्ञानपूर्ण मन में दबी हुई आध्यात्मिक निधि को प्रकट करने का माध्यम बनते हैं। जिस प्रकार जगत् के समस्त अनुभव ज्ञाता एवं ज्ञेय के मध्य अन्त:क्रिया का प्रभाव होते हैं, उसी प्रकार आध्यात्मिक अनुभव भी साधक एवं साध्यवस्तु के एकत्व के ही प्रभाव होते हैं, यह एकत्व भौतिक अथवा मानसिक रूप में हो सकता है, यह देहधारी गुरु अथवा उनके उपदेशों-विचारों से भी हो सकता है।

एक साधक गुरु से ही आध्यात्मिकता एवं दिव्य भाव की अन्तर्धारा प्राप्त करता है। इसके पश्चात् गम्भीर साधना द्वारा, वह इसमें सहस्र गुणा वृद्धि करता है। यह समस्त साधकों का कर्तव्य है। गुरु परम सत्य की प्राप्ति का द्वार हैं, परन्तु साधक को स्वयं ही इस द्वार में प्रवेश करना होता है। गुरु सहायक तत्त्व हैं, परन्तु साधना का वास्तविक कार्य साधक का ही उत्तरदायित्व है।

गुरु वस्तुत: आपके हृदय में ही वास करते हैं। वे सदैव आपके साथ हैं। आपको सच्चे मन से, सच्चे भाव से उनका स्मरण करना है; स्मरण मात्र से आप तुरन्त उनकी आध्यात्मिक उपस्थिति का निश्चयमेव अनुभव करेंगे। क्षुद्र अहंकार के नाश के परिणामस्वरूप गुरु आपके भीतर अभिव्यक्त होते हैं, आपके समक्ष प्रकट होते हैं। अत: उनके स्वागतार्थ सदैव तत्पर रहिए तथा स्वयं को पूर्णतया रिक्त अर्थात् अहंकार शून्य कर दीजिए ताकि वे आपको परिपूरित कर सकें।

गुरु पूर्णिमा गुरु भक्ति के नवीनीकरण तथा अशुद्ध इच्छाओं एवं अहंकार के नाश द्वारा साधना शक्ति को जाग्रत करने का अवसर है। जिस प्रकार गुरु पूर्णिमा अथवा व्यास पूर्णिमा के दिन से प्रारम्भ हुए चातुर्मास में संन्यासीवृन्द ब्रह्मसूत्र एवं उपनिषदों का अध्ययन करते हैं, उसी प्रकार अन्य जनों को भी अपने सद्ग्रन्थों यथा वेद, श्रीमद्भगवद्गीता, श्रीमद्भागवत महापुराण, रामायण एवं योगवासिष्ठ आदि का अध्ययन करना चाहिए तथा उनकी मुख्य विषयवस्तु 'परम ब्रह्म ही एकमात्र सत्य है' पर गहन चिन्तन-मनन करना चाहिए। इस सत्य की ही वेदान्त प्रबल उद्घोषणा करता है।

आप सब पर भगवान् व्यास तथा समस्त ब्रह्मविद्या गुरुओं की अनुग्रह वृष्टि हो। आप गुरु-भक्ति एवं गुरु-उपदेशों के श्रद्धापूर्वक पालन द्वारा आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करें।

(अनुवादिका : स्वामी गुरुवत्सलानन्द माता जी)

गुरु पूर्णिमा सन्देश

श्रेष्ठतम गुरु दक्षिणा[१]

(परम पावन श्री स्वामी चिदानन्द जी महाराज)

उज्ज्वल अमर आत्मन् !

आज 'गुरुवार' गुरु तत्त्व पर मनन करने का दिन है। आज हम सब इस प्रश्न पर विचार करें — वह सर्वश्रेष्ठ सेवा, सर्वश्रेष्ठ भक्ति, सर्वश्रेष्ठ आराधना क्या है जो हम अपने गुरु के प्रति अर्पित कर सकते हैं ?

सर्वश्रेष्ठ गुरु भक्ति है — समस्त प्राणियों से प्रेम करना, सबके प्रति करुणाशील होना, किसी प्राणी को कभी चोट नहीं पहुँचाना, भले बनने, भला करने तथा सबकी सेवा करने का यथासम्भव प्रयास करना ताकि हम सबके लिए केवल भलाई, सहायता एवं सेवा के स्रोत बन जायें। हमारे विचारों, शब्दों एवं कार्यों द्वारा हमारे चारों ओर के जीवन में केवल सकारात्मक, रचनात्मक, शुभ एवं सुन्दर का संचार हो। हमारे द्वारा कभी नकारात्मक, विध्वंसात्मक, हानिप्रद कार्य न हों।

अत: दया, करुणा एवं परोपकार के मूर्तिमन्त विग्रह बनने से अधिक श्रेष्ठ अन्य कोई गुरु भक्ति नहीं है, इससे अधिक श्रेष्ठ गुरु सेवा एवं गुरु आराधना अन्य नहीं है। यही सर्वश्रेष्ठ गुरु दक्षिणा भी है। यही शिष्यत्व का विशिष्ट लक्षण है।

वह श्रेष्ठतम आराधना, श्रेष्ठतम भक्ति तथा सेवा क्या है जो हम गुरु के प्रति अर्पित कर सकते हैं ? सत्यनिष्ठा श्रेष्ठतम गुरु दक्षिणा, श्रेष्ठतम गुरु भक्ति एवं श्रेष्ठतम गुरु सेवा है। गुरु की पूजा-आराधना करने की यह दूसरी मुख्य विधि है। इससे अधिक श्रेष्ठ अन्य मार्ग नहीं है।

सत्य के विपरीत आचरण गुरु भक्ति के विपरीत आचरण है, यह गुरु के प्रति श्रद्धा के विपरीत आचरण है। यदि हम सभी युगों के महान् गुरुवृन्द द्वारा उद्घोषित आदर्शों के अनुरूप जीवन व्यतीत नहीं करते हैं, तो हमारी श्रद्धा मिथ्यानुकृति, दिखावा अथवा आडम्बर बन जाती है। अत: अपने प्रत्येक कर्म में सत्यनिष्ठा एवं ईमानदारी का पालन सर्वोच्च गुरु भक्ति, सर्वोच्च गुरु दक्षिणा एवं सर्वोच्च गुरु सेवा है।

सर्वोत्तम-महानतम गुरु सेवा, गुरु भक्ति एवं गुरु दक्षिणा क्या है ? आत्म-नियन्त्रण करिए, मन एवं इसकी इच्छाओं पर विजय प्राप्त करिए तथा धारणा एवं ध्यान में सुस्थित हो जाइए। इससे अधिक महानतम गुरु भक्ति, गुरु दक्षिणा, गुरु सेवा कुछ नहीं है। यह गुरु के प्रति श्रद्धा व्यक्त करने का सर्वोत्तम प्रकार है। आत्मजयी बनिए। आत्म-नियन्त्रण करना, मन की इच्छाओं एवं कल्पनाओं पर विजय प्राप्त कर इसे भगवान् पर केन्द्रित करना महानतम गुरु भक्ति एवं गुरु दक्षिणा है। यह ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर स्वरूप गुरु के प्रति सच्ची श्रद्धा एवं भक्ति की अभिव्यक्ति है, श्रेष्ठतम गुरु सेवा है।

भगवान् शिव त्रिशूल धारण करते हैं। यह संहारक अस्त्र है। भगवान् विष्णु चक्रधारी हैं। चक्र भी संहारक अस्त्र है। भगवान् शिव एवं भगवान् विष्णु अपने अस्त्रों का प्रयोग करते हैं। ब्रह्मा जी कोई संहारक अस्त्र धारण नहीं करते हैं। वे अहिंसा के

१. द डिवाइन लाइफ १९९६ में प्रकाशित आलेख का अनुवाद

साकार विग्रह हैं। वे जीवन प्रदान करते हैं, जीवन की सृष्टि करते हैं। चतुर्भुज ब्रह्मा जी अपने एक हाथ में कमण्डलु, एक में जपमाला, एक में वेद धारण करते हैं तथा एक हाथ से अभयमुद्रा द्वारा सबको अभय प्रदान करते हैं।

इस प्रकार ब्रह्मा जी सृष्टिकर्ता हैं एवं अहिंसा के साकार विग्रह हैं। भगवान् विष्णु सत्यनारायण हैं, सत्य के साकार विग्रह हैं। भगवान् शिव पूर्ण आत्मजयी हैं तथा अपने मन एवं इन्द्रियों को प्रत्याहारित कर सदैव गहनतम ध्यान की अवस्था में लीन हैं। अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य — ये तीन सद्गुण ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर स्वरुप गुरु तत्त्व का सार हैं। गुरु तत्त्व रूपी सूर्य के इन सद्गुणों रूपी प्रकाश को स्वयं में आत्मसात् करना एवं इसे अपने जीवन एवं आचरण में परिपूर्णता, विशुद्धता एवं भव्यता के साथ प्रतिबिम्बित करना पूर्ण चन्द्रमा के समान विभासित होना है।

यही शिष्यत्व है। यही श्रेष्ठतम गुरु सेवा, श्रेष्ठतम गुरु भक्ति, श्रेष्ठतम गुरु आराधना है। यही गुरु दक्षिणा अर्पित करने का श्रेष्ठतम प्रकार है। दया, करुणा, पूर्ण आत्म-नियन्त्रण एवं भगवद्-चिन्तन के साकार विग्रह बन जाना ही शिष्यत्व का सार है। यही गुरु भक्ति एवं गुरु सेवा का सार है।

आध्यात्मिक जीवन के इन महत्त्वपूर्ण तथ्यों एवं सत्यों पर हम गहन चिन्तन-मनन करें, इनकी महत्ता का अनुभव करें तथा धन्य हो जायें। भगवान् का आशीर्वाद आप सब पर हो।

(अनुवादिका : स्वामी गुरुवत्सलानन्द माता जी)

गुरु स्वयं ब्रह्म अथवा ईश्वर है। गुरु ही आपका सच्चा पिता, माता, मित्र, पथ-प्रदर्शक तथा संरक्षक है। साधकों की आध्यात्मिक उन्नति के लिए गुरु की कृपा अनिवार्य है। श्रुति कहती है—''जिस महात्मा साधक में ईश्वर के प्रति परम भक्ति है तथा गुरु के प्रति उतनी ही भक्ति है जितनी ईश्वर के प्रति, उसके लिए यह (उपनिषद् के) गुप्त रहस्य प्रकट हो सकते हैं।''

ब्रह्म ही एकमेव सत्य है। वह सबकी आत्मा है। वह सर्वोपरि है। वह इस जगत् का सार-तत्त्व है। वह 'एकमेवाद्वितीयम्' है तथा सभी नाम-रूपों एवं विभेदों का अधिष्ठान है। तू ही वह अमर, सर्वव्यापक, सुखमय ब्रह्म है। 'तत्त्वमसि'— तू वही है। इसका साक्षात्कार कर मुक्त बन जा।

—स्वामी शिवानन्द

उचित भावदृष्टि – साधकों हेतु परमावश्यक[१]

(परम पावन श्री स्वामी चिदानन्द जी महाराज)

उत्सवों, समारोहों, धार्मिक त्योहारों एवं अनुष्ठानों के दो पक्ष एवं उद्देश्य होते हैं। एक है — दीर्घकालीन परम्परा से मान्यता प्राप्त बाह्य स्तर पर किये गये कार्य तथा दूसरा पक्ष एवं उद्देश्य है — इन उत्सवों द्वारा हमें जीवन के आन्तरिक सत्य का पुनःस्मरण कराना एवं जीवन के वास्तविक उद्देश्य अर्थात् मनुष्यत्व से दिव्यत्व की ओर ऊर्ध्वारोहण के प्रति हमें जाग्रत करना। प्रत्येक उत्सव उच्चतर आध्यात्मिक सत्यों के स्मरण हेतु एक सामाजिक एवं धार्मिक प्रतीक स्वरूप है।

सामान्य प्रतीक निष्क्रिय अथवा मौन होते हैं, परन्तु ये उत्सव-त्योहार 'क्रियाशील प्रतीक' होते हैं। विभिन्न पवित्र उत्सवों द्वारा उद्घाटित सत्यों को उनकी शास्त्रीय भूमिका के अध्ययन द्वारा ही भली प्रकार समझा जा सकता है। महानतम दिव्य विभूति भगवान् श्री राम के पावन जन्म दिवस, श्री रामनवमी के शुभ अवसर पर हमें उनकी महिमा के गान, उनके पावन नाम के संकीर्तन तथा उनकी पूजा-आराधना करने का सौभाग्य प्राप्त होता है। श्री रामनवमी के अवसर पर सम्पूर्ण भारत में भक्तों एवं साधकों को यह महान् सौभाग्य मिलता है। भगवान् श्री राम का धरा पर अवतरण हम सब साधक-मुमुक्षुवृन्द के लिए विशेष महत्त्व रखता है जिन्होंने आध्यात्मिक आदर्श की प्राप्ति हेतु अपना जीवन समर्पित किया है तथा भगवद्-कृपा से यह अनुभव करना प्रारम्भ कर दिया है कि जीवन के वास्तविक उद्देश्य की प्राप्ति संसार के नश्वर सुखों को भोगने द्वारा नहीं अपितु शाश्वत, अविनाशी परम तत्त्व के साक्षात्कार हेतु प्रयास द्वारा होती है। भगवान् श्री राम के प्राकट्य का यह अवसर जीवात्मा के दिव्यत्व की ओर ऊर्ध्वारोहण के आन्तरिक पथ पर कार्यशील सिद्धान्तों के व्यावहारिक प्रदर्शन का माध्यम है।

विश्व के समस्त सन्त-महापुरुषों के जीवन धर्मशास्त्रों की जीवन्त व्याख्या प्रस्तुत करते हैं तथा इसी प्रकार भगवान् के विभिन्न अवतार एवं उनके जीवन-चरित्र आध्यात्मिक जगत् के सिद्धान्तों एवं योगसाधना के आन्तरिक जीवन में कार्यशील सत्यों को प्रकट करते हैं। परम तत्त्व के विभिन्न अवतारों एवं लीलाओं द्वारा आध्यात्मिक साधना के विविध पक्ष प्रकटित एवं प्रदर्शित किये जाते हैं। यदि उनकी महत्ता को समझा जाये तो ये परमात्म तत्त्व की प्राप्ति हेतु प्रयत्नशील साधक के लिए अत्यन्त सहायप्रद होंगे। ये अवतार-चरित एक सच्चे, श्रद्धालु, उचित बोध एवं ग्रहणशीलता से युक्त साधक के समक्ष महान् सत्यों को प्रकट करते हैं।

यदि हम कुछ क्षणों के लिए रामायण के एक महान् पात्र श्री हनुमान् जी के जीवन पर दृष्टिपात करें तो हम जान पायेंगे कि असीम शक्ति, विद्वत्ता एवं अवर्णनीय उपलब्धियों से सम्पन्न होते हुए भी वे पूर्ण विनम्रता, समर्पण, भगवान् के प्रति दृढ़ भक्ति से युक्त एक आदर्श साधक थे। उनके सभी कार्य स्वार्थपूर्ण इच्छा से नहीं अपितु भगवान् श्री राम की सेवा के एकमात्र उद्देश्य से प्रेरित थे, इस प्रकार उनके सभी कार्यों में उनका भाव अत्यन्त शुद्ध-पावन था। वे एक आदर्श भक्त, आदर्श सेवक एवं आध्यात्मिक साधक थे क्योंकि उन्होंने सदैव

१. द डिवाइन लाइफ १९६७ में प्रकाशित आलेख का अनुवाद

अपने अहंकार पर नियन्त्रण रखा तथा वे भगवान् के प्रति पूर्ण समर्पण एवं सेवा के भाव से एक क्षण को भी च्युत नहीं हुए। भगवान् के प्रति सच्चा प्रेम एवं भक्ति ही श्री हनुमान् जी की शक्ति है। भगवान् में, उनकी कृपा एवं उनके नाम में पूर्ण एवं अटल विश्वास की शक्ति ही श्री हनुमान् जी की शक्ति है, इस सत्य को ही प्रकट करने हेतु मानो रामायण के पृष्ठों में श्री हनुमान् का उज्ज्वल उदाहरण हमारे समक्ष प्रस्तुत किया गया है। अत: हमारे समस्त कार्यों, दैनिक पूजा-आराधना एवं साधनाभ्यास में उचित भाव का होना अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है।

सदा-सर्वदा विद्यमान भगवद्-तत्त्व की सर्वव्यापकता के प्रति हमें जाग्रत रहना चाहिए। उनकी नित्य-निरन्तर विद्यमानता के भाव से हमारे समस्त कार्य आध्यात्मिक रूप से सुरभित एवं सुन्दर होंगे। हमारे कार्य लौकिक एवं साधारण हो सकते हैं परन्तु हमारा भाव सदैव यही रहना चाहिए कि हम सच्चिदानन्द के सागर में रह रहे हैं, क्रिया कर रहे हैं।

यच्च किञ्चिज्जगत्सर्वं दृश्यते श्रूयतेऽपि वा।
अन्तर्बहिश्च तत्सर्वं व्याप्य नारायण: स्थित:।।

वह परम तत्त्व 'नारायण' समस्त वस्तुओं के भीतर एवं बाहर समाया है। यदि हम अपने कार्य भगवान् की सर्वत्र विद्यमानता की इस शान्ति एवं आनन्दपूर्ण जाग्रति के साथ करते हैं तो हमारे सभी कार्यों का आध्यात्मीकरण हो जाता है, इसकी ही परम आवश्यकता है।

कार्य करते समय हमें यह भाव रखना चाहिए कि हम जो कुछ भी कर रहे हैं, वह उन सदा-सर्वदा विद्यमान भगवद्-तत्त्व की पूजा ही है जो समस्त नाम-रूपों के माध्यम से हमारे समक्ष प्रकट हैं। ''**पुरुषेवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भव्यम्**'' — जो भी कुछ वर्तमान में है तथा भविष्य में होने वाला है, वह परम पुरुष ही हैं। उनके अतिरिक्त कोई नहीं है। **न इह नाना अस्ति किञ्चन्** — यहाँ नानात्व-अनेकत्व नहीं है। जड़ एवं चेतन सब कुछ वह एक परमात्म तत्त्व ही है। इस भाव के साथ हमें अपने सभी कार्य करने चाहिए।

सन्त एकनाथ के जीवन में यह भाव अत्यन्त अद्भुत रूप में दिखाई देता है। वे काशी से गंगा जी का पावन जल लेकर रामेश्वर में श्री रामनाथ के अभिषेक हेतु जा रहे थे। तब भगवान् ने उनकी परीक्षा ली। एक गधे में भी भगवान् के दर्शन कर सन्त एकनाथ ने उस परीक्षा में भव्य सफलता प्राप्त की। मार्ग में एक गधा पड़ा हुआ था; प्यास के कारण उसका कण्ठ सूख गया था और जिह्वा बाहर निकल आयी थी। हजारों तीर्थयात्री उस मार्ग से गुजरे परन्तु किसी ने उस निरीह गधे की ओर नहीं देखा क्योंकि उन सबकी दृष्टि भौतिक ही थी। परन्तु सन्त एकनाथ जब रामेश्वर मन्दिर के समीप पहुँचे, तो उनकी दृष्टि प्यास से व्याकुल इस प्राणी पर पड़ी। उसके कष्ट से वे अत्यन्त व्यथित हुए तथा इस प्रकार सोचने लगे, ''इस प्राणी के रूप में प्रकट भगवान् की प्यास को शान्त करने से अधिक महान् पूजा मैं क्या कर सकता हूँ?'' उन्होंने उस प्राणी में केवल भगवान् के दर्शन किये तथा बिना किसी हिचकिचाहट के वे नीचे झुके तथा उसके मुख में गंगाजल डालने लगे। उनका पूरा शरीर आनन्दातिरेक से रोमांचित हो रहा था। गधे को जल पिलाते समय उन्हें एक क्षण के लिए भी यह पश्चात्ताप नहीं हुआ कि रामेश्वर के रामनाथ के अभिषेक हेतु लाये

गये गंगाजल को उन्होंने एक पशु के ऊपर व्यर्थ ही गँवा दिया। उन्हें इस त्याग का पुरस्कार तुरन्त ही प्राप्त हो गया। गधा अदृश्य हो गया तथा उसके स्थान पर भगवान् नारायण का दिव्य स्वरूप प्रकट हो गया। भगवान् ने सन्त एकनाथ को अपना आशीर्वाद प्रदान करते हुए कहा, ''तुम मेरे सच्चे भक्त हो।'' हमें सन्त-महापुरुषों के जीवन में ऐसे अनेक प्रसंग प्राप्त होते हैं। सन्त नामदेव एक कुत्ते के पीछे भागे थे। सन्त नामदेव भोजन कर रहे थे तो एक कुत्ता उनसे रोटी छीनकर भाग गया। नामदेव जी घी की कटोरी लिये कुत्ते के पीछे भागे और बोले, ''हे प्रभु! यह घी भी लीजिए। आप सूखी रोटी लेकर क्यों भाग रहे हैं?'' इस प्रकार सन्त-महापुरुष अपने जीवन एवं कार्यों से हमें यह उच्च शिक्षा प्रदान करते हैं। समस्त वस्तु-पदार्थों के प्रति हमारी भी यही भावदृष्टि होनी चाहिए। हमें समस्त प्राणियों में केवल भगवान् के ही दर्शन करने चाहिए, तथा इस भाव को सदैव बनाये रखना चाहिए।

यद्यपि हम इस भाव को रखते हैं, परन्तु कर्म हमारे मन को बहिर्मुखी बना देते हैं। मन अन्तर्मुखी रहने पर ही इस भाव को स्थिर रखा जा सकता है। बहिर्मुखी होने पर मन बाहर के वस्तु-पदार्थों के सम्पर्क में आता है तथा प्रत्येक पदार्थ का मन पर एक अलग प्रभाव अंकित होता है। इससे हमारा मुख्य भाव दुर्बल पड़ जाता है तथा पदार्थों से जुड़ी अन्य विविध भावनाएँ जाग्रत हो जाती है। इसका समाधान क्या है? इसका समाधान है — सच्चाई, गम्भीरता एवं धैर्यपूर्वक सतत अभ्यास। हर बार जब मन बहिर्मुखी होता है, इसके एक छोटे अंश को केन्द्र की ओर रखने का प्रयास करिए। जिस प्रकार एक नाविक का दिशासूचक यन्त्र सदैव उत्तर दिशा की ओर ही इंगित करता है; नाव चाहे किसी भी दिशा में चल रही हो, उसी प्रकार आपके मन की अन्तर्धारा सदैव मुख्य भाव को पकड़े रहे। धीरे-धीरे अभ्यास द्वारा इसका विकास किया जाना चाहिए। फिर उपाधियाँ अथवा वस्तु-पदार्थ चाहे जितना मन को विचलित करने का प्रयास करें, मन सदैव अपने मुख्य भाव में दृढ़तापूर्वक स्थिर रहेगा। एक स्थिति ऐसी आयेगी जब यह दिव्य भाव एक क्षण के लिए भी खण्डित नहीं होगा। तब हमारा सम्पूर्ण जीवन ही वास्तविक पूजा, साधना, तपश्चर्या एवं योग में परिवर्तित हो जायेगा। जीवन का यही उद्देश्य है।

समस्त अस्तित्व के एकत्व के इस भाव को दिन-प्रतिदिन गहन एवं दृढ़ बनाने हेतु कुछ व्यावहारिक निर्देशों का पालन किया जा सकता है। हम दिन का प्रारम्भ निद्रा से जागकर तथा अन्त पुन: निद्रा में प्रवेश द्वारा करते हैं। अत: निद्रा से जागने के उपरान्त मन पर सर्वप्रथम यह विचार इस प्रार्थना के माध्यम से अंकित किया जाना जाहिए - ''हे प्रभु! मैं इन सब नाम रूपों में आपकी पूजा करने के लिए ही निद्रा से जाग्रत हुआ हूँ।'' आप भगवान् के विराट स्वरूप के पुजारी एवं आराधक हैं— यही आपका प्रथम विचार होना चाहिए। आप अपने लिए कोई अन्य प्रार्थना इस प्रकार बना सकते हैं, ''हे प्रभु! इस सम्पूर्ण दिवस में, मनसा-वाचा-कर्मणा मैं जो भी करूँ, वह आपकी सतत आराधना स्वरूप हो।''

नमोस्त्वनन्ताय सहस्रमूर्तये सहस्रपादाक्षिशिरोरुबाहवे।
सहस्रनाम्ने पुरुषाय शाश्वते सहस्रकोटियुगधारिणे नम:।।

इस भाव के साथ अपने दिन के कार्यों का आरम्भ करिए।

दिन भर कार्य करते समय थोड़ी-थोड़ी देर बाद कुछ क्षणों के लिए शान्त हो जाइए और प्रार्थना करिए, ''हे नाथ! मैं जो कुछ भी कर रहा हूँ, वह आपकी पूजा है।'' **नाऽहं कर्ता, हरि: कर्ता।** प्रत्येक प्राणी में भगवद्-दर्शन का प्रयास करिए। थोड़ी-थोड़ी देर में स्वयं को अपने इस भाव का स्मरण कराइए — **सर्वं ब्रह्ममयम्** । रात्रि में सोने से पूर्व यह कहते हुए भगवान् के चरणों में अपने समस्त कर्म समर्पित करिए, ''मैंने अपनी समस्त इन्द्रियों तथा मन से जो भी कार्य किये हैं, उन्हें आपकी पूजा स्वरूप अर्पित करता हूँ — **ब्रह्मार्पणम्**।'' इस प्रकार अचेतन मन पर समर्पण के इस विचार को अंकित करने के पश्चात् सो जाइए । यह आध्यात्मिक प्रगति में आपकी सहायता करता है। यह आपके जीवन का व्यावहारिक रूप से आध्यात्मीकरण है। इसके अतिरिक्त जब आप दिन में कोई विशेष कार्य करें, तो उस कार्य के प्रारम्भ एवं अन्त में यही प्रक्रिया दोहराइए। उदाहरणत: जब आप भोजन करने के लिए बैठते हैं तो आप भोजन सर्वप्रथम भगवान् को अर्पित करते हैं, फिर भोजन करना प्रारम्भ करते हैं तथा अन्त में 'ब्रह्मार्पणम्' कहकर उठते हैं। इसी प्रकार जब आप पत्र लिखने के लिए बैठें, तो पहले मानसिक प्रार्थना करिए, ''हे प्रभु! यह आपकी आराधना स्वरूप हो।'' पत्र समाप्त होने पर 'ब्रह्मार्पणम्' कहिए। अपने प्रत्येक कार्य का प्रारम्भ प्रार्थना के साथ करिए तथा अन्त भगवद्-अर्पण के साथ करिए।

आपके समस्त कार्यों को पूजा एवं आराधना में रूपान्तरित करने का यह सरल रहस्य है तथा यही सर्वाधिक प्रभावशाली मार्ग भी है। हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियों ने इस रहस्य की, इस मार्ग की खोज की है तथा इसे एक अमूल्य विरासत के रूप में हमें प्रदान किया है। साधकों को श्रीमद्भगवद्गीता के इस सुन्दर श्लोक का सतत स्मरण करना चाहिए।

ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना।।

जो हवि, अग्नि, यज्ञकर्ता, यज्ञकर्म सबको ब्रह्मस्वरूप समझता है तथा इस प्रकार भगवदीय चेतना में पूणरूपेण संस्थित रहता है, वह ब्रह्म को प्राप्त करता है। साधक दिन-प्रतिदिन के अपने समस्त कार्यों में उचित एवं शुद्ध भाव रखने का यही सर्वोच्च फल प्राप्त करता है। जो मनुष्य दिव्य सद्गुण, श्रद्धा, भक्ति, सेवा, पूर्ण आत्मसमर्पण एवं शुद्ध भाव के साथ अपने शरीर एवं मन की शक्तियों का उपयोग करता है, वह जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है। समस्त अवतार पुरुष एवं महान् विभूतियाँ भगवान् के पवित्र नाम के जप एवं उनकी पावन सेवा में सतत संलग्न रहने के उज्ज्वल आदर्श को मानवता के समक्ष प्रस्तुत करते हैं। भगवद्-भक्ति, भगवद्-आराधना एवं धर्म से युक्त आपके सभी कार्य एवं साधनाभ्यास भगवान् के साथ शाश्वत एकत्व की प्राप्ति के रूप में फलीभूत होते हैं। हम सब श्री रामनवमी के शुभ अवसर पर शुद्ध भाव के साथ प्रार्थना एवं आराधना करें तथा मन का यह शुद्ध-पवित्र भाव केवल इन वार्षिक अवसरों पर ही नहीं अपितु हमारे दिन-प्रतिदिन के जीवन के प्रत्येक क्षण में इसी प्रकार बना रहे। भगवान् श्री राम के आशीर्वाद आप सब पर हों।

(अनुवादिका : स्वामी गुरुवत्सलानन्द माता जी)

सूचना

कोविड–१९ महामारी के संक्रमण तथा इसके परिणामस्वरूप हुए लॉकडाउन के कारण वाइ. वी. एफ. ए. प्रेस ने २५ मार्च २०२० से कार्य करना बन्द कर दिया था। अतः हम अप्रैल से जून माह तक मासिक पत्रिकाओं 'द डिवाइन लाइफ' एवं 'दिव्य जीवन' का मुद्रण एवं प्रकाशन नहीं कर सके। तथापि, साधक एवं भक्तवृन्द को लाभान्वित करने के उद्देश्य से जुलाई माह में 'द डिवाइन लाइफ' पत्रिका के मुख्य अंशों के डिजिटल प्रारूप को आश्रम वेबसाइट पर अपलोड किया गया।

अब, भारत सरकार द्वारा अनलॉक प्रक्रिया प्रारम्भ की गयी है, अतः वाइ. वी. एफ. ए. प्रेस ने सरकार द्वारा जारी निर्देशों की अनुपालना करते हुए पुनः कार्य करना आरम्भ किया है। अगस्त माह से हम पत्रिकाओं को उनके मुख्य अंशों सहित यथासम्भव नियमित रूप से प्रकाशित करने का प्रयास करेंगे।

—द डिवाइन लाइफ सोसायटी

२१ जून २०२०

आध्यात्मिक पथ के सहपथिको-मित्रों,

दिव्य आत्मन्,

ॐ नमो नारायणाय।

ॐ नमो भगवते शिवानन्दाय।

सस्नेह प्रणाम।

गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज के इस सेवक का 'दिव्य जीवन' पत्रिका के माध्यम से आपको सम्बोधित करने का यह प्रथम अवसर है। इस विनम्र अभिव्यक्ति के साथ-साथ आप सबको श्री गुरुदेव के विपुल आशीर्वाद एवं अनुग्रह प्राप्त हों।

कोविड-१९ महामारी के संक्रमण एवं इसके परिणामस्वरूप हुए लॉकडाउन के कारण आज प्रत्येक व्यक्ति अनेक प्रकार की कठिनाइयों एवं कष्टों का सामना कर रहा है। हम जानते हैं कि सामान्य रूप से जीवन निर्वाह हेतु आप सबको कितना अधिक कष्ट उठाना पड़ रहा है। हम प्रतिदिन परमपिता परमात्मा एवं श्री गुरुदेव के पावन चरणकमलों में आप सबके सुख एवं कल्याण हेतु प्रार्थना करते हैं। हम सर्वशक्तिमान् एवं परम करुणामय भगवान् की इच्छा में पूर्ण विश्वास रखते हैं कि उनकी इच्छा, उनके विधान में हम सबका परम कल्याण है।

वर्तमान परिस्थिति में हमें भगवान् में अविचल श्रद्धा रखते हुए अपने सद्गुणों रूपी संसाधनों यथा पुरुषार्थ, अनुशासन, सहनशीलता तथा दूसरों के प्रति दया एवं करुणा का सदुपयोग करना चाहिए। इस अवसर पर पीड़ितों एवं दुःखी जनों की प्रेम एवं आनन्दपूर्वक की गयी सेवा भगवान् द्वारा पुरस्कृत एवं आशीर्वादित होगी। साधकों के जीवन में ऐसे अवसर बहुत कम ही आते हैं।

मूकं करोति वाचालं पंगुं लङ्घयते गिरिम्।
यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्द माधवम्।।

''मैं उन परमानन्दस्वरूप माधव को श्रद्धापूर्वक प्रणिपात करता हूँ जिनकी कृपा से मूक व्यक्ति बोलने लगता है तथा पंगु पर्वत लाँघ लेता है।''

भगवान् की महिमा का वर्णन करता यह श्लोक भौतिक जगत् मात्र की सत्ता में विश्वास करने वाले एक सांसारिक मनुष्य के लिए असमंजसकारी एवं अविश्वसनीय हो सकता है। परन्तु एक सच्चे भगवद्-भक्त के लिए यह अक्षरश: सत्य है। वह जानता है कि वह स्वयं इसका प्रमाण है, अत: भगवद्-कृपा में वह अडिग श्रद्धा एवं विश्वास रखता है।

इस दृश्यमान् जगत् के विविध अनुभवों के मूल में भगवान् का वास है। हम सबके भीतर वे जगदीश्वर निवास करते हैं, वे हममें से प्रत्येक के सर्वाधिक निकट एवं सर्वाधिक प्रिय हैं। इस सत्य का हमें अनुभव करना है तथा इसमें संस्थित होना है, यही जीवन का लक्ष्य है जिसके विषय में हमारे गुरुदेव हमें पुन: पुन: अथक रूप से जाग्रत करते रहे हैं। इस धरा पर जीवन की अनिश्चितता का सत्य सम्पूर्ण विश्व में दृष्टिगोचर हो रहा है, जिससे कोई विमुख नहीं हो सकता है। परन्तु साथ ही साथ, यह

अन्तर्वासी परमात्मा की ओर मुड़ने का एक महान् अवसर भी है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि भीषण कठिनाइयों एवं कष्टों के समय ही भगवद्प्राप्ति की आकांक्षा तीव्र रूप से प्रज्वलित हुई है।

अभी आपमें से अधिकांश भक्त दु:खी अनुभव कर रहे होंगे कि वे श्री गुरुदेव के आश्रम आकर उनके पावन चरणकमलों में कुछ समय व्यतीत नहीं कर पाये। आप सब परिवारजनों के मध्य रहते हुए, अपने हृदय में ही श्री गुरुदेव की दिव्य उपस्थिति का अनुभव करिए। प्रतिदिन भगवन्नाम का जप, कीर्तन एवं स्वाध्याय करिए। इन आध्यात्मिक अभ्यासों से आपका मन शान्त-प्रसन्न होगा तथा आप भगवान् एवं श्री गुरुदेव के साथ एकत्व अनुभव करेंगे। भगवद्-स्मरण एवं भगवन्नाम के जप से भगवान् के अनुग्रह की वृष्टि होती है। श्री गुरुदेव का वरदहस्त सदैव आप सब पर है।

आश्रम में कोविड-१९ महामारी के संक्रमण के कारण हुए लॉकडाउन तथा इससे सम्बन्धित सरकारी निर्देशों का गम्भीरतापूर्वक पालन किया जा रहा है। पहले लॉकडाउन से ही आश्रम में आगन्तुकों-अतिथियों का प्रवेश वर्जित है।आश्रम मन्दिरों में नियमित रूप से पूजा होती है। सायंकालीन सत्संग कुछ अन्तेवासियों की सहभागिता के साथ संक्षिप्त अवधि के लिए आयोजित किया जाता है। आश्रम हॉस्पिटल ओ. पी. डी. के माध्यम आंशिक रूप में कार्यरत है। लॉकडाउन के कारण आश्रम की मासिक पत्रिकाओं का प्रकाशन भी नहीं हो पाया है। सरकारी निर्देशों की अनुपालना करते हुए आश्रम द्वारा श्री गुरुपूर्णिमा, श्रद्धेय गुरुदेव का पुण्यतिथि आराधना दिवस एवं आगामी उत्सवों को पूर्व वर्षों की भाँति भव्य रूप से नहीं मनाने का निश्चय किया गया है। इन पवित्र उत्सवों को अत्यन्त सादगी से मनाया जाएगा। आप सभी जानते हैं कि वर्तमान परिस्थिति को देखते हुए यह नहीं कहा जा सकता है कि स्थिति कब सामान्य होगी।

श्रद्धेय गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज के प्रिय भक्तवृन्द! ऐसे अनुपम-अद्वितीय गुरु की छत्रछाया प्राप्त करने के अपने महानतम सौभाग्य को पहचानिए। श्री गुरुदेव सदैव हमारे साथ हैं; हमें उन्हें पुकारना मात्र है, उनकी ओर निहारना मात्र है। इस सत्य में अविचल एवं अडिग श्रद्धा रखिए।

श्रद्धावान् लभते ज्ञानम् - यह श्रद्धा आपको परम ज्ञान प्रदान करेगी तथा सदा के लिए जन्म-मृत्यु के बन्धन से मुक्त कर देगी।

आप सबके परम कल्याण, शान्ति, समृद्धि एवं सुख के लिए यह सेवक श्री गुरुदेव के चरणारविन्द में पुन: अपनी हार्दिक प्रार्थना अर्पित करता है।

आपका एवं श्री गुरुदेव की सेवा में

स्वामी योगस्वरूपानन्द

परमाध्यक्ष

द डिवाइन लाइफ सोसायटी

तिरेसठ नयनार सन्त :

वीरलमिन्दा नयनार

(परम पावन श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज)

उनका जन्म सेंगुन्नरु नामक एक पर्वतीय स्थान में हुआ था, जाति से वे वेलाला थे। वे भगवान् शिव के परम भक्त थे। भगवान् की कृपा से वे मैं-पन और मेरा-पन के भाव से पूर्णतया मुक्त थे। वे समदृष्टि से सम्पन्न थे। उन्होंने शिव भक्तों की अतिशय सेवा करते हुए मन की पवित्रता प्राप्त कर ली थी। उनके लिए शिव भक्तों की पूजा स्वयं भगवान् शिव की पूजा से यदि बढ़ कर नहीं तो पूर्णतया समान तो थी ही। उनका यह मानना था कि शिव भक्तों की पूजा किये बिना कोई भी भक्त भगवान् की कृपा प्राप्त नहीं कर सकता और यह भी, कि यद्यपि कोई व्यक्ति पूर्ण श्रद्धा से शिवलिंगम् की पूजा करता हो, किन्तु यदि वह शिव भक्तों की निन्दा करता हो तो वह मोक्ष पाने का अधिकारी नहीं होगा। वह प्रतिदिन मन्दिर जाते थे और भगवान् की पूजा करने से पहले उन्हें वहाँ पर जो भी शिव भक्त मिल जाते, उनकी पूजा किया करते थे।

वे सेंगुन्नरु से तीर्थयात्रा के लिए निकले और तिरुवरुर आ गये। एक दिन जब वे भगवान् की पूजा कर रहे थे तभी सुन्दरमूर्ति नयनार मन्दिर में आये। सुन्दरर वहाँ बैठे हुए शिव भक्तों के आगे से उन सब की उपेक्षा करते हुए सीधे मन्दिर के गर्भगृह में भगवान् की पूजा करने के लिए प्रविष्ट हो गये। वीरलमिन्दा, जो यह सब देख रहे थे, अत्यन्त व्याकुल हो गये। शिव भक्तों का यह अपमान वे सहन न कर सके। उन्होंने सुन्दरर से कहा, ''आपने शिव भक्तों का अपमान किया है। अपने इस कृत्य से आपने स्वयं को शिव भक्तों के पावन चक्र में रहने के अयोग्य कर लिया है। अतः आपको इस पावन घेरे में से बहिष्कृत किया जाता है।'' और फिर उन्होंने आगे कहा, ''और भगवान् शिव को भी, बिना विचार किये ऐसे अनुचित हाथों से पूजा स्वीकार कर लेने के कारण दिव्य जगत् से बहिष्कृत माना जायेगा।'' अपने विचारों के प्रति वे इतने दृढ़ थे कि वे भगवान् तक को भी फटकार लगा सकते थे! वस्तुतः ये भगवान् शिव ने सभी भक्तों को अपने भक्तों के प्रति उचित भाव रखने का निर्देश देने के लिए स्वयं ही उनके माध्यम से यह कहा था।

सुन्दरर तत्काल ही वीरलमिन्दर का भक्तों के प्रति और स्वयं भगवान् के प्रति अन्तर्निहित भाव समझ गये और उन्होंने उनको दण्डवत् प्रणाम किया। फिर उन्होंने वीरलमिन्दर की प्रशंसा में एक पदिगम गाया। पदिगम सुनते ही उनका हृदय ऐसा द्रवित हुआ कि उन्होंने सुन्दरर को सादर प्रणाम किया और कहा,''आपका हृदय शिव भक्तों की सेवा में भलीभाँति प्रतिष्ठित है। आपकी उनके प्रति सच्ची भक्ति है।'' भगवान् शिव वीरलमिन्दर की शिव भक्तों के प्रति एकनिष्ठ एवं सुदृढ़ भक्ति को देख अत्यन्त प्रसन्न हुए। इस प्रकार भगवान् ने भक्तों की अद्वितीय महिमा को प्रकट किया और फिर उन्हें शिव गणों के सुधन्य लोकों में भेज दिया तथा गणों का मुख्य पद प्रदान कर दिया। ऐसे निष्ठावान् भक्तों की जय हो!

(अनुवादिका : स्वामी शिवाश्रितानन्द माता जी)

आपका शान्ति-दूत :

मेरे प्रिय बच्चो, आप दिव्यता में जियो!

(परम पावन श्री स्वामी चिदानन्द जी महाराज)

प्रार्थना सहित मैं कामना करता हूँ कि आप सब सदैव दिव्य उपस्थिति में निवास करें, क्योंकि वह विद्यमानता जीवन का गुह्य आन्तरिक सत्य है। उस परम सत्य के बिना जीवन सम्भव ही नहीं है। इस धरती पर जीवन की सम्भावना केवल और केवल उस शाश्वत सत्य के विद्यमान होने के कारण ही है। हमारे यह अलग से प्रतीत होने वाले जीवन भी उसी परम सत्ता के कारण सम्भव हैं। हमारे अस्तित्व का सार भी वही है जिसे धर्मों द्वारा भगवान् कहा गया है और वह ही समस्त प्राणियों की अन्तर्निहित दिव्य सत्ता हैं।

अब आप सोचेंगे कि यदि ऐसा है और हम उनकी विद्यमानता में हैं, तब फिर हम उन्हें साक्षात् देखते क्यों नहीं या पहचानते क्यों नहीं? इसका एक कारण है। यदि आप पूछें कि क्या उन्हें देख या जान सकना सम्भव है, तो इसका उत्तर है, 'हाँ, ऐसा निश्चित रूप से सम्भव है!' और आप उन्हें जान-पहचान क्यों नहीं सकते? इसका कारण है, आपकी दृष्टि का और मन का इन्द्रियों के माध्यम से बहिर्मुखी रहना। आप इन्द्रियों के माध्यम से ज्ञान प्राप्त करने में संलग्न हैं, किन्तु दिव्य सत्ता इन्द्रियों द्वारा बोधगम्य वस्तु नहीं है। इन्द्रियों के द्वारा जाने जाने वाले समस्त वस्तु-पदार्थ विनाशशील और सीमित हैं; उनका अस्तित्व देश-काल की सीमा में बद्ध है। वह परम सत्ता, परमात्मा देश-काल की उन सीमाओं से पूर्णतया अतीत है जिनसे मानव चेतना आबद्ध है। देश और काल की रचना से भी पहले, मानव चेतना की रचना से भी पहले वह सत्ता जिन्हें हम भगवान् कहते हैं, उनका अस्तित्व था। वह कारण रहित, सबका कारण, देश-कालातीत सत्ता, इन्द्रियों द्वारा जाने जा सकने वाली वस्तु नहीं है।

यदि हम उन्हें जानना चाहते हैं तो हमें मन की सामान्य प्रक्रिया का विपरीतीकरण करना होगा। देखने, सुनने, स्पर्श करने, चखने और सूँघने के मार्गों से भगवान् को जाना नहीं जा सकता। बाह्यगामी मन को निश्चित रूप से अन्तर्मुखी करना पड़ेगा। इन्द्रियों के समस्त द्वारों को बन्द करना होगा और मन को भीतर की ओर खींच कर हृदय के मध्य में स्थित करना होगा। यहाँ परमात्मा सदैव, 'सोऽहम्, सोऽहम्, सोऽहम्' के रूप में विद्यमान हैं। वह सत्ता जो 'मैं हूँ' के रूप में जागरूक रहती है, वह आपके मन-बुद्धि की मौन साक्षी है। वह 'मैं हूँ' की आधारभूत अन्तरतम जागरूकता ही भगवान् का प्रकाश है। 'मैं ये हूँ' अथवा 'मैं वह हूँ' की जागरूकता नहीं, वह तो केवल परिशुद्ध 'मैं हूँ' का अस्तित्व है।

यह परिपूर्ण चैतन्य का प्रकाश है। इसमें ऐसी शान्ति और आनन्द है जो वर्णनातीत है तथा ऐसी परिपूर्णता है जिसे अन्य कुछ भी आवश्यकता नहीं है। यदि चैतन्य के केन्द्र बिन्दु को स्पर्श कर सकें तो आप सम्राटों के सम्राट् हो जायें और तब फिर आप किसी प्रकार की भी आवश्यकता, आशा, इच्छा या लालसा के दास न रहें। इस ज्ञान को अनमोल मोती, सर्वश्रेष्ठ धन और समस्त निधियों की निधि कहा गया है। यह सुख और शान्ति की परिपूर्णता है और ये वह सत्ता है जो सदा-सर्वदा है। साम्राज्यों का उद्भव होता है और अन्त हो जाता है; सम्राट् शासन करते हैं और शून्य में विलीन

हो जाते हैं; महान् विजेता आते हैं और समय के साथ उनके नाम विस्मृति के गर्भ में खो जाते हैं। इन सभी सांसारिक वस्तु-पदार्थों की महिमा, विलुप्त हो जाने वाली छाया मात्र है। सृष्टि के सभी वस्तु-पदार्थ इसी प्रकार चले जाने वाले हैं, किन्तु वह वस्तु, जो बिना किसी परिवर्तन के सदैव प्रकाशमान है, वह केवल शाश्वत दिव्य सत्ता है।

और आपकी महिमा ये है कि आप उस महान् अद्वितीय सत्ता के एक अभिन्न अंग हैं। आपके व्यक्तित्व का मूल तत्त्व आपकी दिव्यता है। यदि यह तत्त्व न हो तो आप शून्य मात्र हों। आप देखते ही हैं कि यौवन ग्रीष्म कालीन पुष्प के समान क्षीण पड़ जाता है और शारीरिक सौन्दर्य एवं शक्ति भी क्षणभंगुर ही है। शिशु के जन्म होने के साथ ही मृत्यु उसके साथ-साथ चलती है। जिसे आप जीवन कहते हैं, वह आपके अन्तिम श्वास की ओर तीव्र गति से निरन्तर चलने वाली यात्रा के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है। जब कोई व्यक्ति अपना जन्मोत्सव मनाता है, केक काटता और मोमबत्तियाँ बुझाता है, तो वह क्या करता है? वह मूर्ख मनुष्य, वह तो वास्तव में अपने जीवन में से एक वर्ष घट कर कम हो जाने के दिन को ही मना रहा होता है। यह यथार्थ स्मरण करने की अपेक्षा कि वह अपनी मृत्यु की ओर एक पग और निकट हो गया है, वह इसे भुला कर प्रसन्नता से केक आदि खाने-पीने में मग्न है। मानव की यह विचित्र अल्प बुद्धि आश्चर्यजनक है!

फिर भी, ऐसी मूर्खता के होते हुए भी, ऐसा वह क्या है जो आपके जीवन को महान् एवं भव्य बनाता है? जन्म, ज़रा, व्याधि, क्षय और मृत्यु के होने पर भी महान् सत्य यह है कि आप इस शरीर से भिन्न, इससे कहीं अधिक कुछ और हैं। आपके इस नाशवान् नाम-रूप के भीतर उस अनश्वर सत्य का ज्योतिर्मय महान् प्रकाश जगमगा रहा है। आप वह ही हैं, अस्थि-पंजर का यह पिंजरा अथवा यह नाम-रूप धारी देह वस्तुतः आप नहीं हैं। यह देह एक पिंजरा है जिसमें आप बद्ध हैं और जितना अधिक आप स्वयं का तादात्म्य इसके साथ बढ़ाते जाते हैं, उतना ही आपका यह बन्धन गहरा एवं दृढ़ होता जाता है। यह शरीर तो एक दिन अनिश्चित काल के लिए हड़ताल पर चला जायेगा और जब शरीर हड़ताल पर चला गया, तब फिर आप और अधिक समय के लिए इस घर में किरायेदार बन कर नहीं रह सकेंगे।

किन्तु यह तो इस पहलु से देखने का एक दृष्टिकोण है। यदि आप एक अन्य दृष्टिकोण से देखें, तो इस शरीर से बढ़ कर और अधिक महिमाशाली कुछ नहीं है। यह भगवान् का मानव को प्रदान किया गया सर्वश्रेष्ठ उपहार है। यह अन्तर्स्थित भगवान् का जीवन्त, चलता-फिरता मन्दिर है। यहाँ आप अकेले नहीं रहते—उन भगवान् के साथ शाश्वत साझेदारी सहित आप यहाँ हैं जो आपके निकटतम से भी अधिक निकट तथा प्रियतम से भी कहीं अधिक प्रिय हैं। वे आपके अविच्छिन्न सहचर हैं। उनके साथ आपका सम्बन्ध, पूर्ण के साथ उसके ही एक अंश का सम्बंध है, और जैसे ही आप भगवान् के साथ अपनी इस आन्तरिक साझेदारी के प्रति जागरूक हो जाते हैं, उसी क्षण से आपका यह शरीर कारागर नहीं रह जाता।

तब आपकी आन्तरिक मुक्ति प्रारम्भ हो जाती है। जैसे बन्दी, बन्दीगृह के भीतर होते हैं, बन्दीगृह के अधिकारी और प्रबन्धकर्ता जन भी बन्दीगृह के भीतर होते हैं। किन्तु प्रबन्धक एवं देख-रेख करने वाले लोग जिस प्रकार से भीतर होते हैं, बन्दीजनों से उनका भीतर होना पूरी तरह से भिन्न होता है, क्योंकि वे सब पूर्णतया स्वाधीन होते हैं और उन्हें हर प्रकार की स्वतन्त्रता होती है। आपको भी अपने इस शरीर में इसी प्रकार से उन्मुक्त

रूप में रहना होगा। जैसे ही आप अपनी अन्तर्स्थित दिव्यता को अनुभव करने लगेंगे, उसी क्षण से आपका जीवन, बन्धन से मुक्ति में परिवर्तित हो जायेगा। तब आपको इस भौतिक जगत् में रहने का पश्चात्ताप नहीं रहेगा। आप देखेंगे कि आप यहीं और अभी भगवान् में निवास कर रहे हैं।

यह शरीर भगवान् द्वारा दिया गया अनमोल उपहार क्यों हैं, इसका एक अन्य कारण भी है। यदि आप स्वयं का इस शरीर के साथ सही एवं उचित ढंग से सम्बन्ध जोड़ते हैं तो यह शाश्वत आनन्द प्रदान करने का उपकरण बन जाता है। फिर यह भार अथवा दुःख का कारण नहीं रहता, अपितु यह एक सम्पत्ति एवं वरदान बन जाता है। तब आप एक आदर्श जीवन जीने के लिए, उपकरण के रूप में इसका सदुपयोग कर सकते हैं और यह आपको उस परम लक्ष्य तक पहुँचाने का वाहन बन जाता है जहाँ आपको निश्चित रूप से पहुँचना ही है। जब हमारे महान् ज्ञानी गुरुजनों ने यह दृष्टिकोण प्रतिपादित किया तो उन्होंने कहा कि यह देह उस नौका के समान है जो आपको सागर से पार ले जाने में सहायक हो सकती है, किन्तु यह सहायता इस पर निर्भर करती है कि आप स्वयं का सम्बन्ध इस देह से किस प्रकार स्थापित करते हो।

क्या आपका मन और शरीर, आपके विचार, भावनाएँ और इन्द्रियाँ आपके नियन्त्रण में हैं या आप उनके नियन्त्रण में हैं? प्रश्न यह है कि क्या आप इन सबके मालिक बन कर जीवन जी रहे हैं या उनके दास बने हुए हैं? देखिए, इस अत्यधिक गम्भीर प्रश्न पर आपको विचार करना पड़ेगा। यदि आप अपनी इन्द्रियों के और उनकी क्षुधाओं के गुलाम बने हुए हैं, मन और उसकी लालसाओं के दास बन चुके हैं, तो अब तो भले ही आप प्रसन्नता से नाच और गा रहे हों, किन्तु बाद में आप रोयेंगे। परन्तु यदि आप बुद्धिमान हैं और यदि आप मालिक बन कर, देह-मन को अपने नियन्त्रण में रखते हुए जीवन जी रहे हैं, तब आप सशक्त से अधिक सशक्त होते हुए विकास करते जाएँगे और भविष्य में आनन्दित रहेंगे।

कहते हैं कि मधुर प्रारम्भ और कटु अन्त से कहीं अधिक श्रेष्ठ है कि प्रारम्भ भले ही कटु हो किन्तु अन्त सुखदायी हो। जब मैं देह, मन और इन्द्रियों के नियन्त्रण के सम्बन्ध में कहता हूँ तो किसी साधु-संन्यासी के नियन्त्रण की सीमा की बात नहीं करता। प्रत्येक मनुष्य से सन्यासी होने की अपेक्षा नहीं की जाती, किन्तु प्रत्येक मनुष्य से यह तो अपेक्षा रखी जाती है कि उसमें उतनी बुद्धि तो है ही कि दुःख को आमन्त्रण न दे। यही प्रसन्नता की और धन्यता की कुञ्जी है। क्या आप अपने नियन्त्रण में हैं अथवा मन-इन्द्रियों द्वारा आपको चलाया जा रहा है? यदि आप वास्तविक प्रसन्नता चाहते हैं तो आपको निश्चित रूप से नियन्त्रित रहना होगा। पशुओं का जीवन, नैसर्गिक अथवा साहजिक जीवन है और उनके कार्य-कलाप विचारपूर्वक एवं उद्देश्यपूर्वक नहीं जिये जाते, न ही उनके स्वभाव, उद्देश्यपूर्वक किये गये संयम का परिणाम होते हैं। वे सब तो सहज-स्वभाव ही प्रकृतिवश अपने कामों लगे रहते हैं, किन्तु मानव-जीव अपनी श्रेष्ठ मनःशक्तियों का उपयोग कर सकता है। हम उद्देश्यपूर्ण कार्यों में स्वयं को लगा सकने में सक्षम हैं, और हम में यह क्षमता भी है कि जब बुद्धि उचित समझे तो विवेकपूर्वक संयम भी रख सकते हैं। केवल मानव को दी गयी इन विशेष विलक्षणताओं का यदि हम सदुपयोग नहीं करते तो प्रश्न यह उठता है कि क्या हम अपने मानव-स्वभाव को लेकर जी भी रहे हैं !

(अनुवादिका : स्वामी शिवाश्रितानन्द माता जी)

आध्यात्मिकता का सत्य-स्वरूप :

प्राणायाम, सामंजस्यपूर्ण श्वसन-कला

(परम पावन श्री स्वामी कृष्णानन्द जी महाराज)

जैसा कि हमने देखा, उचित आसन में बैठना प्रथम चरण है। उस आसन में बैठने (जो स्वयं में एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है) के पश्चात् दीर्घ श्वास लीजिए। यह एक सहज प्रक्रिया होनी चाहिए। दीर्घ अन्त:श्वसन एक सहज, लगभग स्वचालित प्रक्रिया होनी चाहिए। अशान्ति, चाहे वह मानसिक हो, अथवा स्नायविक हो, भारी श्वास-प्रक्रिया में परिणत होती है, तथा इस प्रकार अस्वाभाविक रूप से ली गयी गहरी श्वास स्वाभाविक विचार-प्रक्रिया को बाधित करती है। मन विचलित होने पर श्वास-प्रक्रिया बाधित होती है तथा विलोमत:। कुण्ठित भावनाएँ तथा किसी भी प्रकार के तनाव भी श्वास-प्रक्रिया को बाधित करते हैं। अत: श्वास-प्रक्रिया तथा विचारधारा को एक सुन्दर रूप में एकत्रित करना आवश्यक है। गहरा, स्वत: श्वास अन्दर लेना तथा उसी प्रकार स्वत: श्वास बाहर निकालने का कुछ मिनटों का अभ्यास साधक को आगामी सोपानों के लिए प्रस्तुत कर देगा।

यह भी आवश्यक है कि जब हम बैठे हों, तब हमारे मन में कम से कम अगले एक या दो घण्टे के लिए किसी भी प्रकार के कार्य न हों। जब तुरन्त कोई कार्य करना हो, तो जप या ध्यान में बैठना निरर्थक है क्योंकि योगाभ्यास एक महान् आध्यात्मिक उपासना है जो हम कर रहे हैं। यह एक सम्मान है जो हम अपने भीतर महान् दिव्यता को अर्पित कर रहे हैं। योग व्यवसाय नहीं है, अर्थात् यह जीवन के अन्य क्रियाकलापों के समान नहीं है। यह किसी भी प्रकार का क्रियाकलाप नहीं है। वस्तुत:, यह वह है जो समस्त क्रियाकलापों की पूर्णता की प्राप्ति के पश्चात् किया जाता है।

यह स्मरण रखना आवश्यक है। कार्यकलापों को निज पूर्ति की प्राप्ति के पश्चात् समाप्त होना है, पराजयवादी मानसिकता अथवा कुण्ठित भावना के कारण नहीं। अत: योगाभ्यास करते समय हमें यह अनुभव करना चाहिए कि जो करना है, वह किया जा चुका है, तथा आगे जो करना है, उसे तुरन्त करना आवश्यक नहीं है, जिसके परिणामवश मन किसी भी प्रकार के क्रियाकलाप की स्थिति में नहीं है।

पूर्णतया रिक्त मन आवश्यक है। हममें से बहुत कम लोग मन से कार्यमुक्त रहते हैं। हम प्राय: अपनी कलाई पर बँधी घड़ी को देखते हैं, जो आधुनिक समय का एक रोग है। हम जहाँ भी हों, अपनी घड़ी को ही देखते हैं। एक व्यक्ति अपनी घड़ी को कितनी बार देखता है, यह अवलोकन करके एक चिकित्सक ने अत्यन्त सुन्दर ढंग से दिल के दौरे की सम्भावना की ओर इंगित किया है। उससे हम निर्धारित कर सकते हैं कि व्यक्ति तनावयुक्त है, तथा तनावयुक्त व्यक्ति को दिल का दौरा पड़ सकता है। हम यदा-कदा अपनी घड़ी को क्यों देखते हैं? हमें क्या हो गया है? इसका तात्पर्य है कि हमारी तन्त्रिकाएँ तनावग्रस्त हैं तथा हम अन्दर से अशान्त हैं। किसी भी प्रकार का तनाव नहीं होना चाहिए। उसके लिए हमें यह जानना आवश्यक है कि तनाव क्या है।

यह कहना अत्यन्त सरल है कि तनाव नहीं होना चाहिए, परन्तु इस शब्द का वास्तविक तात्पर्य क्या है? यह मन की एक भावना है जिसका सम्बन्ध तन्त्रिकाओं से है। मन, प्राण तथा नाड़ियाँ—सभी एक दूसरे से आत्मीय भ्रातृभावना से संयुक्त हैं, तथा यदि एक अशान्त होती है, तो दूसरी भी अशान्त हो जाती है। नाड़ियाँ प्राण को विचलित कर सकती हैं, प्राण मन को विचलित कर सकता है, तथा इस प्रकार...; तथा विचलित मन प्राण को विचलित कर सकता है तथा प्राण नाड़ियों को विचलित कर सकते हैं, इत्यादि। तनाव एक प्रकार की भावना है जो प्राण,

नाड़ियों, यहाँ तक कि मांसपेशियों से सम्बद्ध है, तथा यह पाचन-प्रक्रिया श्वास-नली, रक्तप्रवाह तन्त्र तथा शरीर में समस्त प्रकार की गतिविधियों को प्रभावित करती है। अत:, जब हम तनावयुक्त होते हैं, सब कुछ अप्राकृतिक स्थिति में होता है। इसी को आपातकालीन दशा कहा जाता है, ऐसा कुछ जो कुछ विशेष आवश्यकता होने पर लाया गया है, तथा तब शरीर कर्म हेतु तत्पर होता है। परन्तु यह अधिक समय तक क्रियान्वित नहीं होता। जैसा कि मैंने कहा, योगाभ्यास एक सुन्दर पुष्प है जो कार्य की पूर्णता का परिणाम-स्वरूप है, तथा योग को किसी भी प्रकार के क्रियाकलाप के समतुल्य मानना असम्भव है। हम विश्व-योग में रहते हैं, परन्तु योग कार्य नहीं है।

फिर, योग क्या है? हम क्रिया के अतिरिक्त अन्य किसी भाव में सोच नहीं सकते, तथा, यदि योग क्रिया नहीं है, तो यह क्या है? योग एक स्थिति है। यह कार्य करने अथवा क्रियाकलाप हेतु स्वयं को प्रवृत्त करके अन्तिम लक्ष्य प्राप्त करने की स्थिति नहीं है। क्या कर्म तथा 'सत्ता' (being) में भिन्नता है? हाँ, अति बृहत् अन्तर है। कर्म दूरस्थ लक्ष्य की पूर्णता-भावना द्वारा प्रेरित होता है तथा यह स्वयं में लक्ष्य नहीं है। हम कर्म हेतु कार्य नहीं करते, परन्तु क्रिया-रूपी इस प्रक्रिया द्वारा पूर्णता हेतु प्रयोजन-कर्म करते हैं।

यद्यपि हम 'अभ्यास' शब्द का प्रयोग योग के सन्दर्भ में करते हैं, यह केवल स्वयं को व्यक्त करने का माध्यम है क्योंकि यह कानूनी अथवा चिकित्सात्मक अभ्यास आदि जैसा कोई सामान्य अभ्यास नहीं है। यह एक भिन्न प्रकार का अभ्यास है जिसे हम योग कहते हैं। योग सत्ता (being) की पूर्णता को बहु-विस्तृत रूप प्रदान करने की प्रवृत्ति है।

अभी भी हम 'सत्ता' के रूप में हैं। मैं एक व्यक्ति हूँ तथा आप एक व्यक्ति हैं, क्योंकि हमारा वास्तविक स्वभाव एक प्रकार का अस्तित्व है। परन्तु यह अपूर्ण अस्तित्व है, अपूर्ण सत्ता, तथा इसीलिए यह अशान्त सत्ता की स्थिति है। यद्यपि हमारा अस्तित्व है, हमारा वह अस्तित्व वर्तमान में एक प्रकार की परिस्थिति बन गयी है जो परिवर्तनशील है, जिससे, वास्तव में, दुर्भाग्यवश, हमारा होना लगभग एक प्रकार की गतिविधि बन चुका है।

सत्ता गतिविधि नहीं हो सकती। यह मिथ्या धारणा है। परन्तु, हमारी व्यक्तिगत सत्ता, मनोवैज्ञानिक वैयक्तिकता तथा व्यक्तित्व, सब प्रकार से इतना अधूरा है, इतना अपूर्ण है, पूर्णता हेतु इतना लालायित है, जिसका उसमें अभाव है, कि वह उस प्रकार की सत्ता में लिप्त हो गया है जिसे 'होना' (becoming) कहते हैं, सत्ता (being) नहीं। दार्शनिक कहते हैं कि यह शब्द-ब्रह्म रूपी संसार (world of becoming) है। संस्कृत में संसार शब्द-ब्रह्म का हेतु है। यह सदा अन्य किसी पदार्थ हेतु तत्पर रहता है, तथा हमें बार-बार संसार की ओर आकृष्ट करता है।

जैसा कि एक पुरानी कहावत है, मनुष्य 'है' नहीं, उसे सदा 'बनना' है। हम कभी भी 'हैं' नहीं, हमें अभी 'बनना' है। हम जो बनना चाहते हैं, वह अभी हम बने नहीं हैं, तथा 'बनना' तथा 'सत्ता' (being) की अवधारणा के तथ्यों के बीच विचार एवं भावना का यह मिश्रण हमारे तनाव का स्रोत है।

प्रत्येक मनुष्य तनाव की स्थिति में है क्योंकि उसके समक्ष अपूर्ण लक्ष्य तथा सत्ता की वर्तमान स्थिति के मध्य खींचातानी चल रही है। हमारा लक्ष्य, जो अभी प्राप्त नहीं हुआ है, की प्रकृति, तथा वर्तमान में हमारी वास्तविक परिस्थिति के समन्वय की आवश्यकता है। वास्तविकता कुछ है, तथा लक्ष्य कुछ और है; यह हमारा भाग्य है। जो हमारे पास नहीं है, उसे प्राप्त करने के लिए हम सदा अनुरक्त रहते हैं। इसीलिए हम कार्यरत हैं। अन्यथा, हम कर्म क्यों करेंगे? हमारी कार्यशीलता यह इंगित करती है कि हम एक ऐसे लक्ष्य की ओर अग्रसर हैं जो हम प्राप्त, उपार्जित, अधिकृत, उपभोग इत्यादि करना चाहते हैं।

(क्रमशः)

(भाषान्तर : मेधा सचदेव)

मानव से ईश-मानव :

श्री स्वामी शिवानन्द जी का व्यक्तित्व

(श्री एन. अनन्तनारायणन्)

(पूर्व-अंक से आगे)

स्वामी शिवानन्द जी महाराज के कार्य करने की शैली में एक अन्य महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त जिसका उन्होंने आजीवन पालन किया, यह था कार्य सम्पादन के प्रति छोटी से छोटी बात की ओर पूरा ध्यान देना। यदि कुछ करना है तो वह भलीभाँति किया जाना चाहिए, भले ही वह कैसा भी और कितना भी बड़ा या छोटा कार्य हो, उसे लापरवाही से अथवा अव्यवस्थित ढंग से नहीं किया जाना चाहिए। ३ अगस्त, १९५६ में स्वामी जी ने ऋषिकेश में एक बाज़ार का नींव पत्थर रखा। जब वे आश्रम में वापस लौट कर आये तब स्वामी जी के नींव-पत्थर रखने की कार्यशैली के विषय पर उनके शिष्य परस्पर वार्तालाप करते हुए ऐसा सोच रहे थे कि स्वामी जी को सचमुच में ही मिस्त्री का कार्य करने का कष्ट उठाने की आवश्यकता नहीं थी, उन्होंने कहा, ''स्वामी जी, बड़े लोग जब किसी महत्त्वपूर्ण भवन का नींव-पत्थर रखते हैं तो वे औपचारिकता के लिये थोड़ा सा मसाला रख देते हैं।'' ''किन्तु मैं बड़ा आदमी नहीं हूँ'' यह कहते हुए स्वामी जी ने स्पष्ट किया, ''हम जो भी कार्य करते हैं, उसे हमें अपने पूरे मन के साथ और यथा संभव पूर्णता एवं योग्यता के साथ करना चाहिए। जैसे कहावत है कि 'मृत व्यक्ति महिला- सफाई-कर्मचारी ही क्यों न हो, अन्तिम संस्कार तो पूर्ण विधिवत् होना चाहिए' यदि मैं कुछ क्षण के लिए मिस्त्री बना हूँ तो मुझे वह काम पूर्ण कुशलता से और अपने सन्तोष के अनुसार करना चाहिए। मेरे लिए औपचारिकता जैसा कुछ भी नहीं है। सौंपा गया छोटे से छोटा प्रत्येक कार्य मुझे भलीभाँति करना चाहिए।'

१९४९ के शीतकाल की एक रात को रात्रि-सत्संग के उपरान्त स्वामी जी भजन हॉल से बाहर आये, ''क्या आपने सायंकाल में बालामल्लजी का बुखार देखा?'' उन्होंने आश्रम के सेवक से पूछा। सेवक ने 'नहीं' में उत्तर दिया। स्वामी जी तत्काल रोगी के कक्ष में गये और तब तक वहाँ से गये नहीं जब तक कि रोगी की प्रत्येक क्षण की आवश्यकता सम्बन्धी पूर्ण रूप से प्रबन्ध नहीं हो गया। और फिर उन्होंने कहा, ''स्वयं को रोगी के स्थान पर देखें, रोगी की भलीभाँति देख-रेख कर सकने का यही सर्वश्रेष्ठ ढंग है। यदि आप अपने-आपको चिकित्सक समझेंगे तो कुछ न कुछ कमी रहने की सम्भावना रहेगी। यदि स्वयं को नर्स भी समझेंगे तो भी कुछ भूल या कमी रह जायेगी। क्षण भर के लिए सोचें कि आप रोगी हैं, तब आपको कौन-कौन सी वस्तुओं की आवश्यकता होगी! अब देखें कि क्या रोगी के पास वह सब वस्तुएँ हैं या नहीं। आपको निश्चय ही रोगी की आत्मा में प्रवेश कर के देखना चाहिए। यही सच्ची सेवा है।'' और वे निर्देश देते गये :

''यहाँ पर एक बैड-पैन (हाजती) होना चाहिए। यह अति आवश्यक है, विशेष रूप से ऐसी वयोवृद्ध रोगिणी के लिए यह अनिवार्य है। यहाँ पर प्रकाश का प्रबन्ध, माचिस की डिब्बी, पानी की बाल्टी, एक गिलास रखना चाहिए। यह सब कुछ इतने सुव्यवस्थित ढंग से रखना चाहिए कि रोगी बिना किसी कठिनाई के हर वस्तु को उठा सके। शैया की व्यवस्था का आपको विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिए। थोड़ी सी भी लापरवाही से रोगी की निद्रा, जो कि प्रकृति की सर्वश्रेष्ठ चिकित्सक है, उसमें

बाधा हो सकती है। अव्यवस्थित ढंग से बिछाये गये बिस्तर से काम नहीं चलेगा। स्वस्थ मनुष्य के लिए जो सही हो, वह रोगी के लिए कष्टप्रद एवं असहनीय होगा। इसका सदैव ध्यान रखें।''

जो कुछ भी करना चाहिए, उसे बिना किये मत छोड़ें। यह गुरुदेव का सिद्धान्त था। एक बार आश्रम वासी उस रामानन्द नाम के एक अन्तेवासी, जिसे मृत घोषित कर दिया गया था, के अन्तिम संस्कार करने की तैयारी में थे। इतने में ही स्वामी जी आ गये और वहाँ उसके चेहरे पर छायी शान्ति को देख कर बोले, ''उतावली न करें। पहले इसे कृत्रिम प्रश्वसन दें, कुछेक टीके लगायें। पूरी तरह से सुनिश्चित कर लें कि यह मूर्छित अवस्था में नहीं है।'' साधक इधर-उधर भागे, दो लोग तारपीन के तेल से रामानन्द के पैरों की मालिश करने लगे, दो कृत्रिम श्वास देने लगे, एक स्वामी ने टीका लगाया। गुरुदेव स्वयं उसके निकट बैठ कर वक्ष को मलते हुए 'हरे राम' कीर्तन करने लगे।

जब कृत्रिम श्वास देने वाले एक व्यक्ति ने उसका हाथ छोड़ा तो हाथ धरती पर लटक गया। ''ठीक है, अब कहें कृष्ण भगवान् की जय!'' गुरुदेव ने अब यह देख कर कि जो कुछ सम्भव था वह सब कर लिया गया है तब सन्तुष्ट हो कर यह कहा। तब उन्होंने आश्रमवासियों को उसके अन्तिम संस्कार के लिए ले जाने की अनुमति दी। उन्होंने पञ्चाक्षर कीर्तन सहित स्वयं उसके शरीर पर गंगाजल का लोटा डाला।

अपनी ओर से सर्वोत्तम करें और शेष भगवान् पर छोड़ दें। कर्म करना कर्तव्य है, फल से आपका सम्बन्ध नहीं है। गीता के इस दर्शन ने गुरुदेव के समूचे जीवन और कार्यों का संचालन किया। जनवरी १९५६ में स्वामी जी के एक अत्यन्त प्रिय शिष्य स्वामी पूर्णबोधानन्द को पागल कुत्ते ने काट लिया। गुरुदेव ने अत्यन्त शीघ्र उन्हें चिकित्सा के लिए कसौली भेजा, सर्वोत्तम चिकित्सा हेतु जो कुछ भी सम्भव था, वह सब तत्काल किया। घाव भी भर गये, किन्तु वह शिष्य सम्भवतया अत्यधिक कष्ट सहन न कर सकने के कारण, बच न सका। स्वामी जी, जिन्होंने शिष्य के उपचार हेतु इतना कुछ किया था, अब उन्होंने उसके शरीर को गंगाजी में प्रवाहित करने से पूर्व देखना तक भी नहीं चाहा। गुरुदेव मृत व्यक्ति के लिए शोक करने से अधिक जीवित लोगों की सेवा करने में विश्वास करते थे।

स्वामी जी सब को प्रेम करते थे और अत्यधिक प्रेम करते थे, किन्तु यह प्रेम आसक्ति से दूषित नहीं था। यह पूर्णतया शुद्ध प्रेम था। गुरुदेव का प्रेम दिव्यता से ओतप्रोत था।

गुरुदेव का यह दिव्य प्रेम ही था जिसने न्यूज़ीलैंड के मिशनरी डॉ. सुदरलैंड, जो कि जगाधरी के चिकित्सालय में बहुत वर्षों से सेवारत थे, जैसे व्यक्ति को आश्रम में मात्र तीन घण्टे गुरुदेव के साथ व्यतीत करने के उपरान्त हाथ जोड़े हुए भावोद्रेक से रुँधे कण्ठ से यह कहने पर बाध्य कर दिया, 'स्वामी जी, आपके सौजन्य एवं कृपा के लिए बहुत ही अधिक आभारी हूँ। मैंने आज भारत में अपने जीवन के यह सर्वाधिक लाभप्रद घण्टे व्यतीत किये हैं।'' स्वामी जी का यह अत्यधिक प्रेम ही था जिसने कोलकाता की सन्त माँ अपर्णा से गुरुदेव के लिए, 'सहानुभूति के भगवान्' शब्द कहलवाये। यह उनका वैश्व-करुणा से परिपूर्ण हृदय ही था जिसने शुद्धानन्द भारती से यह कहलवाया कि शिवानन्द जी शिर से पैर तक केवल हृदय ही हृदय हैं, देह नहीं।

(अनुवादिका : स्वामी शिवाश्रितानन्द माता जी)

शिवानन्द ज्ञानकोष :

श्रीमद्भगवद्गीता

(परम पावन श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज)

महात्मा गान्धी एक बार लन्दन के एक विशाल पुस्तकालय में निमन्त्रित किये गये। अध्यक्ष से पूछने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि ग्रन्थ गीता की माँग सबसे अधिक रहती है। भारत का सर्वश्रेष्ठ उपहार अथवा वरदान जो जगत् तथा मानव को प्राप्त हुआ है वह है यही गीता, जो महान् तथा सार्वभौमिक होते हुए भी व्यावहारिक है। पश्चिम के विख्यात दार्शनिकों तथा विचारकों में गीता मन्दिर को अपनी-अपनी भावभीनी श्रद्धांजलि भेंट करने में होड़-सी लग गयी। पश्चिम में विल्हेलमवन हम्बोट्ट जैसे विद्वान् कहते हैं—''जगत् के पास सबसे अधिक सारगर्भित तथा प्रभावशाली रचना गीता ही है।'' अमरीका के महान् ज्ञानी एमर्सन की मेज पर गीता सदैव रहती थी।

गीता भगवान् कृष्ण की वाणी है। यह प्राचीनतम ज्ञान का गीत है। यह आध्यात्मिक संस्कृति की प्रभावशाली पाठ्य-पुस्तक है। यह चिरकाल के लिए लाभदायी है। मेरी तो यह सदैव जीवन-संगिनी रही है। यह विश्व-भर के लिए प्रेरणादायक है।

दिव्य गीत

महाभारत के भीष्म-पर्व की श्रीमद्भगवद्गीता श्री कृष्णार्जुन का संलाप है। अठारह अध्यायों में सात सौ एक संस्कृत के श्लोक हैं, जिनमें गागर में सागर भरा है। बहुत सारा महत्त्वपूर्ण विषय संक्षिप्त कर रखा है। कुरुक्षेत्र की युद्ध-भूमि में भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन के प्रति अपने रोचक तथा शिक्षाप्रद उपदेश में योग, वेदान्त, भक्ति तथा कर्म के परम गहन उत्साहवर्धक गम्भीर तथ्यों तथा रहस्यों की व्याख्या की है। तत्पश्चात् इन्हें ही श्री भगवान् व्यास जी ने मानव मात्र के हितार्थ गीता के रूप में प्रस्तुत किया।

इस समय तक गीता पर अनेक टिप्पणियाँ लिखी गयीं। प्रति श्लोक पर पुस्तक रची जा सकती है। कर्मयोग में प्रवृत्ति वाले एक व्यक्ति को बाल गंगाधर तिलक का गीता-रहस्य, भक्त को श्रीधर जी की टिप्पणी और विवेकी को आदिगुरु श्री शंकराचार्य जी की टिप्पणी से लाभ पहुँचेगा।

गुरु की आवश्यकता

गीता का स्वाध्याय एक योग्य ब्रह्मनिष्ठ गुरु की देख-रेख में श्रद्धा, एकाग्रता तथा पवित्रता से करना चाहिए, क्योंकि इसका विषय गहन तथा गम्भीर है। केवल तब ही इसके रहस्य आपके सामने स्वत: खुल पायेंगे। स्वामी मधुसूदन-गीता, स्वामी शंकरानन्द-गीता, आदिगुरु शंकराचार्य जी की सुन्दर टिप्पणियाँ जो तत्त्वदर्शी ज्ञानियों द्वारा रचित हैं, इनसे ही आपको पर्याप्त सहायता प्राप्त हो सकती है।

भगवान् कृष्ण चेतना के भिन्न-भिन्न स्तरों से बोलते हैं, अत: श्लोकों का ठीक-ठीक अर्थ जानने के लिए आपको योग्य गुरु की आवश्यकता है ही। नहीं तो आपकी दशा वही होगी जो भोजन खाते समय सैंधव माँगने से नमक के स्थान पर अश्व लाने से होती है (सैंधव के दो अर्थ हैं—नमक और अश्व)।

गीता—सर्वमान्य शास्त्र

गीता एक ऐसी सार्वभौमिक पुनीत वाणी है जो जाति, आयु, धर्म के भेद से ऊपर उठ कर सबको प्रिय लगती है। क्योंकि यह सभी प्रकार की प्रवृत्तिवालों के लिए है और मनुष्य को जिस किसी भी स्तर पर वह हो, ऊपर उठाती है। इसी कारण से ही संसार के महान् विद्वानों ने इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

भगवद्गीता में योग की शिक्षा है। यह योग न

तो पूर्व का है, न पश्चिम का। यह तो विश्व-भर का है। उचित प्रकार से जीवन-यापन की विद्या का नाम ही तो योग है। इसका धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं; न ही रंग, जलवायु और व्यवसाय-धन्धे से। श्रीकृष्ण केवल हिन्दुओं के ही देवता नहीं हैं। वह तो सर्वव्यापी आन्तरिक तत्त्व का प्रतीक हैं जो सभी में एक-समान है। उन्होंने केवल अर्जुन को ही गीता नहीं सुनायी। अर्जुन तो मानवता का प्रतिनिधित्व कर रहे थे। जो समस्याएँ अर्जुन के सामने थीं, वे सब मानव के सामने मुँहबाए खड़ी हैं। गीता तो जीवन के सार्वभौमिक प्रश्न का उत्तर है।

जीवन का अर्थ संघर्ष ही तो है, क्योंकि सारा जीवन एक संग्राम ही तो है। जहाँ दैवी और आसुरी शक्तियों का युद्ध सदैव चल रहा है। आपके अन्दर ही महाभारत हो रहा है। धृतराष्ट्र अविद्या है, अर्जुन जीव है, अन्तर्यामी भगवान् कृष्ण सारथी हैं। शरीर ही रथ है, इन्द्रियाँ घोड़े हैं। मन, अहंकार, इन्द्रियाँ, संस्कार, वासनाएँ, लिप्सा, राग-द्वेष, काम, लोभ, मद, ईर्ष्या, कपट इत्यादि पक्के शत्रु हैं।

प्रत्येक मनुष्य के अन्दर सदैव होने वाले आध्यात्मिक और भौतिक संघर्ष के समाधान का प्रतीक है—गीता। यह किसी भी मनुष्य को इसके सन्देश से वंचित नहीं रखती और उसे धन्य-धन्य कर देती है। यह पूर्णतया असाम्प्रदायिक है और मुख्यत: व्यावहारिक। आज के व्यस्त जीवन में यह मुझे, आपको व सबको ऐसा सन्देश देती है जिसके आधार पर जीवन व्यतीत किया जा सकता है।

दैनिक दिनचर्या की व्यावहारिक पथ-प्रदर्शिका

गीता रहस्योद्घाटन या व्याख्या मात्र नहीं, अपितु अपने में पूर्ण समाधान है। यह उत्साह, प्रसन्नता और शान्ति का सन्देश दे कर मनुष्य की अत्यावश्यक समस्याओं का समाधान करती है। मनुष्य के पूरे स्वभाव का आध्यात्मीकरण करती है।

जीवन के अत्यधिक कष्टदायक वातावरण के अन्धकार को अपने प्रकाश से सोते मनुष्य को जगा कर उत्साह, आशा तथा आश्वासन से भर देती है, जिससे निराशा आशा में और निरुत्साहिता को अपनी अनन्त शक्ति तथा अविनाशी तत्त्व के आत्म-विश्वास में बदल देती है।

इसका उत्साहवर्धक सन्देश है कि आत्मा के अमरत्व के साक्षात्कार के लिए आवश्यक नहीं कि मनुष्य घर तथा मित्रादि को छोड़ ही दे, अपितु जगत् के सब कार्य करते हुए, आत्म-दर्शन की लक्ष्य-प्राप्ति सम्भव है। साक्षात्कार की कठिनाइयाँ तो हमारे ही अन्दर हैं—न कि वातावरण में। इस अद्वितीय वरदायक ग्रन्थ का प्रमुख उपदेश है।

आपकी दिनचर्या को सुचारु रूप देने में गीता व्यावहारिक पाठ पढ़ाती है। इसका कथन है—अधर्म से जूझो, दैवी शक्तियों को अपनाओ, इससे भगवत्साक्षात्कार हो जायेगा। गीता का सन्देश, त्याग, प्रेम और कर्तव्य का सन्देश है। सबसे प्रेम करो, बाँट कर खाओ, अपना कर्तव्य पालन करो। राग-द्वेष से ऊपर उठो। हृदय के पट खुले रखो। इसमें से स्वार्थ, लोभ और काम को निकाल कर दूर करो—तभी तो परम मित्र प्रभु इसमें आ कर विराजेंगे। यही गीता की शिक्षा है।

गीता ऐसा कुछ भी करने को नहीं कहती जो साधारण मनुष्य की शक्ति से बाहर की बात हो। भगवान् कहते हैं, ''मैं तुम्हें जोखिम-भरी भूमिकाओं के काम करने को नहीं कह रहा। मैं तो भावग्राही हूँ। मुझे तो हृदय चाहिए। जो तुम्हारे लिए सम्भव हो, वही करो। मैं अपूर्ण को पूर्ण कर दूँगा। यह काम मेरा है, सफलता देवी मेरे हाथ में है।'' गीता तो मुक्ति का आश्वासन देती है और मनुष्य को निर्भय बनाती है। इसी में इसका परम महत्त्व निहित है।

(क्रमशः)

(अनुवादक : श्री स्वामी अर्पणानन्द जी महाराज)

बाल जगत्

जीवन का ध्येय

ज्योति-सन्तानो!

नमस्कार! ॐ नमो नारायणाय!

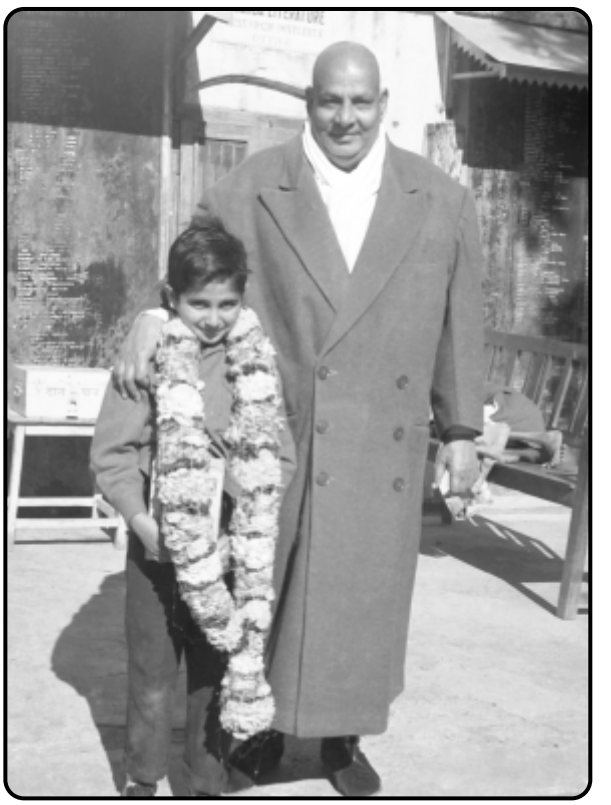

मानव-जीवन का ध्येय आत्म-साक्षात्कार अथवा परम शान्ति, सुख, आनन्द तथा अमरत्व की प्राप्ति है। शान्ति एक जड़ अकर्मण्यावस्था नहीं है और न तो यह मन की अभावावस्था ही है। यह तो आध्यात्मिक उपलब्धि की धनात्मक अवस्था है। यह आपका केन्द्र, आदर्श तथा ध्येय है। सुख और शाश्वत आनन्द की संवाहिका शान्ति की शक्ति अपूर्व ही है।

हलचल, उपद्रव, संघर्ष तथा विवादों का अभाव ही शान्ति नहीं है। हो सकता है कि आप पूर्ण विषम परिस्थिति में पड़े हुए हों। आप विपत्तियों, कष्टों, क्लेशों, कठिनाइयों तथा शोकों में निमग्न रहते हुए भी आन्तरिक सुख और शान्ति का उपभोग कर सकते हैं। हाँ, इसके लिए आपको अपनी इन्द्रियों को समेटना होगा, मन को शान्त करना होगा तथा मन के मल का प्रक्षालन करना होगा।

शान्ति अन्तर में ही प्राप्त की जा सकती है। निश्चय ही शान्ति को आप बाह्य पदार्थों में प्राप्त नहीं कर सकते। धन, स्त्री, सन्तान, सम्पत्ति, प्रासाद इत्यादि आपको शाश्वत शान्ति प्रदान नहीं कर सकते। उफनती हुई वृत्तियों को स्तब्ध कर, कामनाओं और तृष्णाओं का दमन कर उस शान्ति को प्राप्त कीजिए जो सारे अवबोधों का अतिक्रमण करती है। इसमें संस्थित हो जाने पर आप शोक, हानि अथवा असफलता तथा असामंजस्यपूर्ण वातावरण से विचलित नहीं होंगे। आप जीवन की सभी कठिनाइयों तथा आपत्तियों पर विजय प्राप्त करेंगे और अपने सभी उद्योगों में सफल होंगे।

—स्वामी शिवानन्द

सद्गुणों का अर्जन

सुशीलता–स्नेहपात्रता (Amiability)

सुशीलता–स्नेहपात्रता प्रिय बनने और प्रेम उत्पन्न करने का गुण है। एक सुशील मनुष्य का मधुर स्वभाव होता है। वह इतनी अधिक मानसिक दीप्ति, प्रेम एवं आनन्द प्रसारित करता है कि वह सभी गुणग्राही हृदयों में स्थान पाता है। वह स्वभावत: स्नेही एवं प्रियकर होता है। वह दयालु, उदार एवं प्रसन्नचित्त होता है। उसका स्वभाव भला होता है। वह क्षुब्धता–चिड़चिड़ाहट से मुक्त होता है।

सुशील स्वभाव का मनुष्य दूसरों के लिए करुणा एवं प्रेम रखता है, इन गुणों के द्वारा वह दूसरों का प्रेम जीतता है। यह ऐसा स्वभाव है जो दूसरों को प्रसन्न, आनन्दित एवं हर्षित करने का इच्छुक है। एक सच्चा सुशील मनुष्य कठोर शब्दों का प्रयोग नहीं करता है तथा न ही अशिष्ट व्यवहार करता है । अपने सरल स्वभाव से वह सभी परिस्थितियों में प्रत्येक व्यक्ति के साथ समायोजित हो सकता है।

सुशीलता विकसित करिए। इसे अपने स्वभाव का अभिन्न अंग बनाइए।

दुर्गुणों का नाश

व्याकुलता (Anxiety)

व्याकुलता किसी संकटपूर्ण अथवा दुर्भाग्यपूर्ण अनिश्चित स्थिति से उत्पन्न मन की विक्षुब्धता अथवा व्यग्रता है। व्याकुलता जीवन का विकार है। यह जीवन–दीप्ति का नाश करती है तथा जीवन–शक्ति को दुर्बल करती है। व्याकुलता मानव–जीवन का विष है। जो कभी घटित नहीं होगा, उसके विषय में चिन्तित–व्याकुल मत होइए। प्रत्येक दिन के कर्तव्य एवं संघर्ष उस दिन के लिए पर्याप्त हैं, अत: आने वाले कल की व्यर्थ चिन्ता मत करिए।

भगवान् में पूर्ण विश्वास व्याकुलता का नाश करता है। भगवान् में बालसुलभ एवं अटल विश्वास ही व्याकुलता का सर्वश्रेष्ठ उपचार है। भविष्य की चिन्ता मनुष्य को तनावग्रस्त करती है। काल्पनिक संकटों अथवा विपत्तियों से स्वयं को उत्पीड़ित मत करिए। सदैव प्रसन्न एवं प्रफुल्लित रहिए। भगवान् में विश्वास रखिए एवं उचित कर्म करिए। शेष भगवान् पर छोड़ दीजिए। भगवान् सबकी देखभाल करते हैं। वे शिलाओं के बीच की दरार में रहने वाले मेंढक के भोजन की भी व्यवस्था करते हैं। वे आपके लिए सब कुछ करेंगे। भविष्य में किसी दुर्घटना–आपदा की कल्पना करके स्वयं को दु:खी मत करिए। सदैव व्यस्त रहिए। स्वयं को विविध कार्यों में संलग्न रखिए। चिन्ता–व्याकुलता भाग जायेगी।

जो भगवान् की आराधना करता है, उनकी महिमा का गान करता है, उनके नाम का जप करता है, वह भौतिक पदार्थों के लिए व्याकुलता से ऊपर उठ जाता है, उससे मुक्त हो जाता है।

—स्वामी शिवानन्द

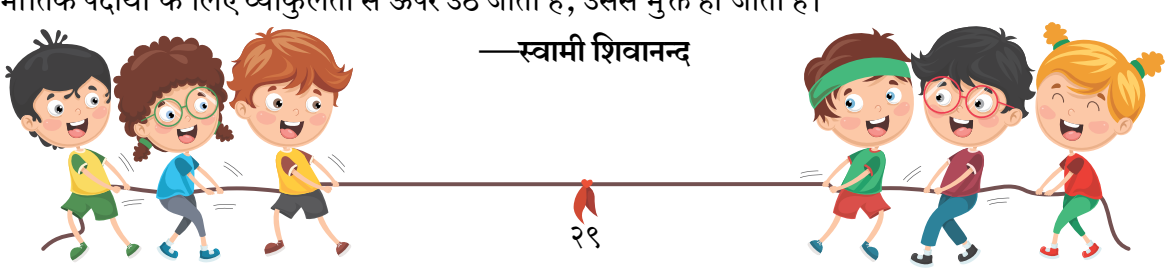

त्रिकोणासन

इस आसन को करने पर यह त्रिकोण के समान दिखाई देता है, इस कारण इसे त्रिकोणासन कहते हैं।

प्रविधि – सीधे खड़े होइए। दोनों पैरों के मध्य दो अथवा तीन फीट की दूरी रखिए। हाथों को कन्धों के दोनों ओर फैलाइए। दोनों हाथ भूमि के समानान्तर रखिए। हथेलियों को भूमि की ओर होना चाहिए। रीढ़ की हड्डी को कमर से बाँयीं ओर धीरे से झुकायें और बाँयें हाथ से बाँयें पंजे को स्पर्श करें। आप सिर को भी थोड़ा झुका सकते हैं। आसन में ५ सेकेंड रुकें और वापस धीरे से खड़े हो जायें। जब आप झुकें अथवा खड़े हों तो हाथों और पैरों को मुड़ने न दें। अब आप दाँयीं ओर मुड़ें और पूर्वानुसार दाँयें हाथ से दाँयें पंजे को स्पर्श करें। ५ सेकेंड रुकें और पुनः पूर्ववत् खड़े होने की स्थिति में आ जायें। यह त्रिकोणासन है। इसे प्रत्येक ओर से ४ बार करें।

लाभ – त्रिकोणासन मेरु नाड़ियों तथा उदरीय अंगों की मालिश करता है, आँतों की क्रमाकुंचन गति में वृद्धि करता है और भूख बढ़ाता है। इसके अभ्यास से कब्ज़ दूर हो जाता है। शरीर हल्का हो जाता है। जिनको कमर, जंघा अथवा पैर में फ्रैक्चर के कारण पैर छोटा होने की शिकायत होती है, उनको इसके अभ्यास से लाभ होता है। इसमें धड़ की मांसपेशियाँ सिकुड़ती हैं, शिथिल होती हैं और खिंचती हैं, इससे रीढ़ की हड्डी लचीली होती है। एक योगी के लिए मेरुदण्ड बड़ा ही महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है, क्योंकि यह मेरुरज्जु तथा संवेदी तन्त्र से संयुक्त है। त्रिकोणासन का अभ्यास मेरुदण्ड को स्वस्थ रखता है तथा यह मेरु नाड़ियों की अच्छी तरह मालिश करता है।

—स्वामी शिवानन्द

कपालभाति प्राणायाम

कपाल संस्कृत शब्द है। इसका अर्थ है ललाट। भाति का अर्थ है चमकना। कपालभाति उस अभ्यास को कहते हैं जिससे कपाल चमकने लगे। यह क्रिया कपाल को शुद्ध बनाती है। इसे षट्कर्मों में से एक मानते हैं।

पद्मासन पर बैठिए। हाथों को घुटनों पर रखिए। आँखें बन्द कर लीजिए। द्रुत गति से पूरक-रेचक कीजिए। इसका अभ्यास उग्रतापूर्वक करना चाहिए। इससे प्रचुर मात्रा में स्वेद निकलेगा। यह बहुत ही लाभदायक अभ्यास है। जो कपालभाति अच्छी तरह कर सकते हैं, वे भस्त्रिका सुगमतापूर्वक कर सकते हैं। इस प्राणायाम में कुम्भक नहीं है। रेचक इस प्राणायाम का महत्त्वपूर्ण अंग है। पूरक (Inhalation) मृदु, मन्द तथा दीर्घ होता है; किन्तु रेचक (Exhalation) को उदर की मांसपेशियों को पीछे की तरफ खींचते हुए शीघ्रता तथा बलपूर्वक करना चाहिए। पूरक करते समय उदर की मांसपेशियों को ढीला छोड़ दीजिए। कुछ लोग कपालभाति करते समय स्वभावतः ही मेरुदण्ड को मोड़ तथा शिर को झुका लेते हैं। ऐसा नहीं करना चाहिए। शिर तथा धड़ एक-सीध में होने चाहिए। भस्त्रिका की तरह श्वास एक के बाद एक सहसा निकलता रहता है। प्रारम्भ में आप प्रति क्षण में एक रेचक कर सकते हैं। धीरे-धीरे आप एक क्षण में दो रेचक कर सकते हैं। आरम्भावस्था में प्रातः समय केवल दश रेचकों की एक आवृत्ति कर लीजिए। दूसरे सप्ताह सायंकाल को भी एक आवृत्ति कर लीजिए। तीसरे सप्ताह दो आवृत्ति प्रातः तथा दो आवृत्ति सायं को करें। प्रति सप्ताह हर आवृत्ति में शनैः-शनैः तथा सावधानीपूर्वक दश रेचक बढ़ाते जाइए और इस प्रकार बढ़ाते हुए हर आवृत्ति १२० रेचक तक ले जाइए।

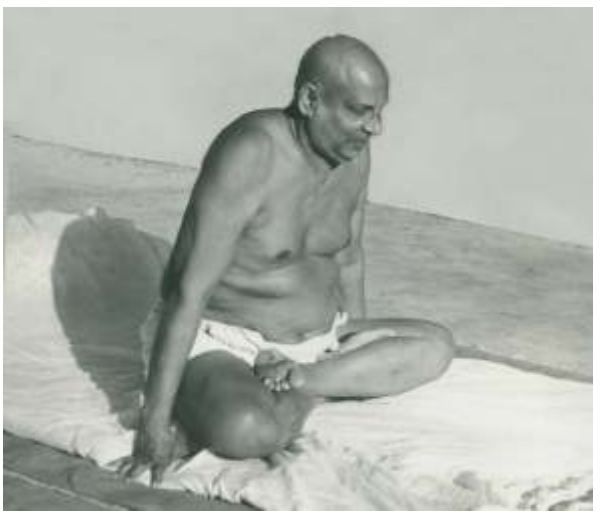

लाभ – यह क्रिया श्वास-प्रणाली तथा नासिका-छिद्रों को शुद्ध करती है। श्वास-नलिका का संकुचन इससे दूर होता है। फलस्वरूप दमा में आराम मिलता है तथा कालान्तर में वह ठीक भी हो जाता है। फेफड़ों के अग्र भाग तक ओषजन (आक्सीजन) पहुँचता है जिससे यक्ष्मा-उत्पादक कीटाणुओं के लिए उपयुक्त प्रजनन-स्थान नहीं मिल पाता। इस अभ्यास के द्वारा क्षय-रोग अच्छा हो जाता है। फेफड़े पर्याप्त विकसित हो जाते हैं। प्रांगार द्विजारेय (कार्बन डाई आक्साइड) बहुत मात्रा में निकल जाता है। रुधिर का मल बाहर आ जाता है। शरीर के कोशाणु तथा ऊतक बहुत बड़ी मात्रा में ओषजन आत्मसात् करते हैं। साधक का स्वास्थ्य सुन्दर बना रहता है। हृदय ठीक-ठीक काम करता है। रुधिर-संवाहन तथा श्वास-प्रणाली यथेष्ट मात्रा में पुष्टता प्राप्त करती हैं।

—स्वामी शिवानन्द

मुख्यालय आश्रम में श्री गुरु पूर्णिमा तथा सद्गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज की ५७ वीं पुण्यतिथि आराधना का उत्सव

वन्दे गुरुणां चरणारविन्दं, सन्दर्शितस्वात्मसुखाम्बुधीनाम्।

जनस्य येषा गुलिकायमानं, संसारहालाहलमोहशान्त्यै।।

''मैं अपने उन परम पावन गुरुओं के चरण-कमलों की श्रद्धा सहित पूजा करता हूँ जिन्होंने हमें आत्मानन्द के शाश्वत सागर की ओर का मार्ग दर्शाया है तथा हमें भव-भ्रान्ति रूपी विष के निवारण की औषधि प्रदान की है।''

कोविड-१९ महामारी के कारण मुख्यालय आश्रम में श्री गुरु पूर्णिमा एवं सद्गुरुदेव की पुण्यतिथि आराधना का उत्सव गत वर्षों की भाँति भव्य रूप से नहीं मनाया जा सका। भक्तों और अतिथियों को भी आश्रम में आने की अनुमति नहीं दी जा सकी।

तथापि, दोनों पुण्यपर्व आश्रम के अन्तेवासियों सहित अत्यन्त श्रद्धा भक्ति पूर्वक किन्तु पूर्णतया सामान्य ढंग से मनाये गये। ५ जुलाई २०२० को श्री गुरु पूर्णिमा का पर्व प्रातः ५ बजे परम पावन समाधि मन्दिर में सद्गुरुदेव के दिव्य सान्निध्य में ब्राह्ममुहूर्त की प्रार्थनाओं एवं ध्यान सहित प्रारम्भ हुआ। तदुपरान्त परम पूज्य श्री स्वामी योगस्वरूपानन्द जी महाराज ने सभी

उपस्थित भक्तों को अपने सन्देश के माध्यम से समस्त मानवता के भले हेतु निरन्तर प्रार्थना करते रहने के लिए प्रेरित किया।

पूर्वाह्न सत्र में, समाधि हॉल में सद्गुरुदेव की पावन पादुकाओं की विशेष पूजा की गयी तथा उसके उपरान्त जयगणेश प्रार्थना और भजन हुए। फिर परम पूज्य श्री स्वामी पद्मनाभानन्द जी महाराज ने उपस्थित समस्त श्रोताओं को आशीर्वाद प्रदान हेतु व्यास भगवान् का आह्वान किया और उनके चरणकमलों में पूजा समर्पण के रूप में ब्रह्मसूत्र के प्रथम चार तथा अन्तिम एक सूत्र का पारायण किया। उसके बाद परम पूज्य श्री स्वामी निर्लिप्तानन्द जी महाराज द्वारा आशीर्वचन हुए जिसमें स्वामी जी महाराज ने श्री गुरु पूर्णिमा महोत्सव के महत्त्व पर प्रकाश डाला। आरती एवं प्रसाद वितरण सहित कार्यक्रम समाप्त हुआ।

१४ जुलाई २०२० को श्री गुरुदेव की ५७ वीं महासमाधि के पावन दिवस पर कार्यक्रम का प्रारम्भ समाधि मन्दिर में प्रार्थनाओं और ध्यान द्वारा किया गया। उसके उपरान्त परम पूज्य श्री स्वामी योगस्वरूपानन्द जी महाराज ने आशीर्वचन दिये जिसके माध्यम से श्री स्वामी जी महाराज ने आश्रमवासियों को गुरुदेव की पावन संस्था के प्रति प्रेमपूर्ण कृतज्ञता–अभिव्यक्ति के रूप में हृदयपूर्वक सेवाएँ समर्पित करने के लिए प्रोत्साहित किया। पूर्वाह्न सत्र में 'ॐ नमो भगवते शिवानन्दाय' मन्त्रोच्चारण सहित सद्गुरुदेव की पावन पादुकाओं में लक्षार्चना समर्पित की गयी। आरती और पावन प्रसाद वितरण सहित कार्यक्रम समाप्त हुआ।

सर्वशक्तिमान् परमात्मा एवं सद्गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज की कृपा सब पर हो।

शिवानन्द होम द्वारा सेवा

''शिवानन्द होम उन एकाकी एवं मरणासन्न लोगों की प्रेमपूर्ण देख-रेख का एक केन्द्र है, जो सड़क के किनारे पड़े मिलते हैं, जिनकी देख-रेख करने वाला कोई नहीं है, जिन लोगों के रहने के लिए कोई घर नहीं है, जिनका न तो स्थायी और न ही अस्थायी रूप से कोई ठिकाना है, जो रोगग्रस्त हो जाते हैं, गुम हो जाते हैं अथवा अपने परिवार द्वारा त्याग दिये जाते हैं।''

—परम पूज्य श्री स्वामी चिदानन्द जी महाराज

शिवानन्द होम के अधिकांश अन्तेवासियों के लिए सामाजिक-दूरी बना कर रखना कोई नई बात नहीं है। एक बार निज घर से बहिष्कृत हो जाने, अपने ही सामाजिक वातावरण से दूर कर दिये जाने पर जब वे सड़क के हो जाते हैं तब सामान्य जन उनसे दूर रहना ही उचित समझते हैं। यद्यपि कुछ वर्ष पहले एक स्त्री के साथ इससे कुछ विपरीत हुआ था। जब वह बिलकुल एकाकी सड़क के बीच बैठी थी और वह भी रात के समय, तो लोगों ने उसे देखा और उसी समय अपनी गाड़ी में बैठा कर शिवानन्द होम में छोड़ गये।

उसकी आयु लगभग ४० वर्ष की थी किन्तु आरम्भ में उसने यह नहीं बताया। कुछ दिन बीत जाने के बाद उसने धीरे-धीरे अपने स्थान, अपने संघर्षों और कष्टों के सम्बम्ध में बतलाना आरम्भ किया। शारीरिक रूप से वह दीन-हीन दशा में ही थी, कई जगहों से उसकी त्वचा कटी-फटी हुई थी, बहुत स्थानों पर खुजली भरे घाव थे जिन सभी में कृमि भरे हुए थे और एक टाँग पर एक बहुत बड़ा संक्रमित फोड़ा था। किन्तु इन सब में उपचार के बाद शीघ्र ही सुधार होने लगा था कि इतने में उसके वक्ष-स्थल में भी फोड़ा होने का पता चला। आवश्यकतानुसार उपचार प्रारम्भ किया गया : स्थानीय चिकित्सालय में संक्षिप्त शल्य-चिकित्सा की गयी और बहुत शीघ्र वह पूरी तरह ठीक हो गयी। तभी उसकी पीठ में तीव्र दर्द आरम्भ हो गया जो बहुत औषधियों से भी

कम नहीं हो रहा था अतः परीक्षण के लिए उसे चिकित्सालय भेजा गया। परीक्षण में पाया गया कि उसकी रीढ़ तपेदिक से ग्रसित है अतः तत्काल ही तपेदिक–विरोधी चिकित्सा प्रारम्भ कर दी गयी। दर्द कम होने लगा और कुछ देर के बाद वह बड़ी कमर–पेटी और छड़ी के साथ पुनः चलने लगी। इस माह, वर्षा ऋतु के साथ ही उसे पुनः एक अन्य शारीरिक कष्ट झेलना पड़ा और जो औषध दी गयी वह अनुकूल नहीं रही अतः शीघ्र ही उसे ड्रिप एवं टीकों पर डालना पड़ा। गुरुदेव की कृपा से दो ही सप्ताह में उसकी स्थिति में सुधार होने लगा और वह उठ कर बैठने, थोड़ा खाना खाने, फिर अपने बरतन स्वयं धोने और शीघ्र ही अपनी सह–कक्षी, जो अधिक आयु की और शैयाग्रस्त माताजी है, के बर्तन धोने को भी तत्पर हो गयी।

सामाजिक–दूरी एक बात है किन्तु शारीरिक–दूरी बहुत कठिन है, शिवानन्द होम जैसी संस्था में यह १०० प्रतिशत नहीं निभायी जा सकती। इसीलिए होम को लॉकडाउन स्थिति में ही रखा जा रहा है क्योंकि अधिकांश अन्तेवासी रोगी विभिन्न प्रकार की चिकित्सा के भीतर रहने वाले हैं, और शारीरिक अथवा मानसिक रूप से विकलांग रोगियों के कारण स्वच्छता के क्षेत्र में भी अत्यधिक ध्यान एवं सावधानी की आवश्यकता रहती है। इसलिए होम के भीतर भी मास्क पहन कर रखना अनिवार्य रखा गया है, बस उन लोगों को छोड़ कर जिनकी नाक की समस्या के कारण यह सम्भव नहीं है।

परमात्मा के निर्देशन, उनकी शान्ति और उनकी, केवल उनकी सुरक्षा के लिए प्रार्थना! ॐ सद्गुरवे नमः।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

''हम सब नाम–रूपों में तुम्हारा दर्शन करें। तुम्हारी अर्चना के ही रूप में इन नाम–रूपों की सेवा करें। सदा तुम्हारा ही स्मरण करें। सदा तुम्हारी ही महिमा का गान करें। तुम्हारा ही कलिकल्मषहारी नाम हमारे अधर–पुट पर हो। सदा हम तुममें ही निवास करें।''

—परम श्रद्धेय श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज

ऑनलाइन डोनेशन सुविधा

द डिवाइन लाइफ सोसायटी मुख्यालय, शिवानन्द आश्रम, ऋषिकेश द्वारा हर्ष सहित यह सूचना दी जाती है कि आश्रम ने भारत एवं विदेश के दानी सज्जनों द्वारा अर्पित दानराशि स्वीकार करने हेतु 'ऑनलाइन डोनेशन' सुविधा १७ जून २०२० से प्रारम्भ कर दी है। जो इस सुविधा का उपयोग करना चाहें वे या तो वेब एड्रेस https://donations.sivanandaonline.org के माध्यम से, अथवा हमारी वेब साइट www.sivanandaonline.org में दिये गये 'ऑनलाइन डोनेशन' लिंक के माध्यम से इसका उपयोग कर सकते हैं।

आश्रम को धन भेजने सम्बन्धी निर्देश

द डिवाइन लाइफ सोसायटी को भेजी जाने वाली धनराशि 'ऋषिकेश' में देय बैंक ड्राफ्ट अथवा चेक द्वारा **"The Divine Life Society" Shivanandanagar, Uttarakhand"** के नाम भेजें। ड्राफ्ट अथवा चेक के साथ एक पत्र में अपना डाक पता, फोन नम्बर, ईमेल आईडी तथा पैन नम्बर लिख कर भेजें।

इलेक्ट्रानिक मनी आर्डर के माध्यम से धन भेजते समय कृपया एक पत्र में इलेक्ट्रानिक मनी आर्डर नम्बर (EMO), भेजने की तारीख तथा उद्देश्य लिख कर भेजें।

द डिवाइन लाइफ सोसायटी मुख्यालय के सदस्यता–शुल्क की एवं शाखाओं के सम्बद्धता–शुल्क की दरें

१.	नवीन सदस्यता–शुल्क*		₹ १५०/–
	प्रवेश–शुल्क	₹ ५०/–	
	सदस्यता–शुल्क	₹ १००/–	
२.	सदस्यता नवीकरण–शुल्क (वार्षिक)		₹ १००/–
३.	नयी शाखा खोलने का शुल्क**		₹ १०००/–
	प्रवेश–शुल्क	₹ ५००/–	
	सम्बद्धता–शुल्क	₹ ५००/–	
४.	शाखा–सम्बद्धता (नवीकरण) शुल्क (वार्षिक)		₹ ५००/–

* सदस्यता के इच्छुक प्रार्थी कृपया प्रार्थना–पत्र के साथ अपना फोटो पहचान–पत्र (Photo Identity) तथा निवास–स्थान के प्रमाण–स्वरूप कोई दस्तावेज (Residential Proof) भेजें।

**नयी शाखा खोलने के लिए मुख्यालय से लिखित अनुमति लेनी होगी।

⇨ कृपया सदस्यता–शुल्क और शाखा–सम्बद्धता–शुल्क ऋषिकेश में स्थित किसी भी बैंक के नाम बने डिमांड ड्राफ्ट अथवा चेक द्वारा भेजें।

हिन्दी में उपलब्ध पुस्तकों की नवीनतम सूची

श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज कृत

अच्छी नींद कैसे सोयें	₹ ७०/-
अध्यात्मविद्या	१४०/-
कर्म और रोग	२५/-
कर्मयोग-साधना	१३०/-
गीता-प्रबोधिनी	५५/-
गुरु-तत्त्व	५५/-
घरेलू चिकित्सा	१९०/-
जपयोग	१२०/-
जीवन में सफलता के रहस्य	१८५/-
ज्योति, शक्ति और प्रज्ञा	४०/-
दिव्योपदेश	३५/-
देवी माहात्म्य	११५/-
धनवान् कैसे बनें	५०/-
धारणा और ध्यान	१७०/-
ध्यानयोग	१३०/-
प्राणायाम-साधना	७५/-
बालकों के लिए दिव्य जीवन सन्देश	१००/-
ब्रह्मचर्य-साधना	११०/-
भगवान् शिव और उनकी आराधना	१५०/-
भगवान् श्रीकृष्ण	१३०/-
मन : रहस्य और निग्रह	२०५/-
मरणोत्तर जीवन और पुनर्जन्म	१३५/-
मानसिक शक्ति	१३०/-
मूर्तिपूजा का दर्शन और महत्त्व	३०/-
मैं इसका उत्तर दूँ?	१३०/-
श्रीमद्भगवद्गीता	४२५/-
योगाभ्यास का मूलाधार	१८५/-
योगवासिष्ठ की कथाएँ	९०/-
योगासन	११५/-
विद्यार्थी-जीवन में सफलता	६०/-
शिवानन्द-आत्मकथा	₹ १२०/-
सत्संग भजन माला	१६०/-
सत्संग और स्वाध्याय	६०/-
सद्गुणों का अर्जन एवं दुर्गुणों का नाश किस प्रकार करें	१९५/-
सन्त-चरित्र	२३५/-
सौ वर्ष कैसे जियें	९५/-
साधना	३२०/-
स्वरयोग	६०/-
हठयोग	१००/-
हिन्दूतत्त्व-विवेचन	१६०/-

श्री स्वामी चिदानन्द जी महाराज कृत

अध्यात्म-प्रसून	३५/-
आलोक-पुंज	१०५/-
ज्योति-पथ की ओर	१०५/-
त्याग : शरणागति	२५/-
भगवान् का मातृरूप	७०/-
मोक्ष सम्भव है!	२५/-
योग-सन्दर्शिका	५५/-
शाश्वत सन्देश	५५/-
शोकातीत पथ	१४०/-
साधना सार	३५/-

अन्य लेखक कृत

एकादशोपनिषदः (मूल मन्त्राः)	१४०/-
गुरुदेव कुटीर में भजन-कीर्तन	५०/-
चिदानन्दम्	२००/-
जीवन-स्रोत	१५०/-
शारीरकमीमांसादर्शनम्	१५/-
शिव स्तोत्र माला	३५/-
श्रीमद्भगवद्गीता (मूलमात्रम्)	१००/-
सर्वस्नेही हृदय	१००/-

५०% अग्रिम। पैकिंग अतिरिक्त । विस्तृत जानकारी के लिए निम्नांकित पते पर सम्पर्क करें :

द डिवाइन लाइफ सोसायटी, पत्रालय : शिवानन्दनगर—२४९१९२, जिला : टिहरी-गढ़वाल, उत्तराखण्ड, भारत

फोन : ०१३५-२४३४७८०, २४३००४०; E-mail : bookstore@sivanandaonline.org

For online orders and Catalogue : dlsbooks.org

NEW RELEASE!

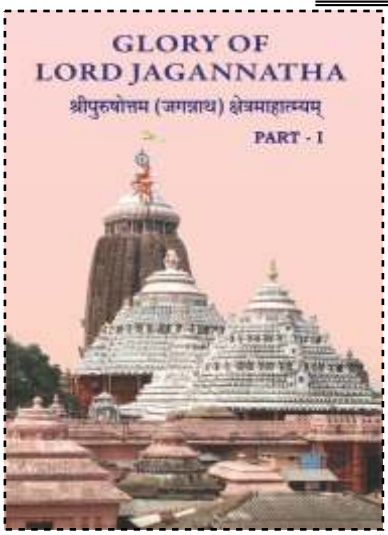

Part - I Pages: 456 Price: ₹ 415/-

Part - II Pages: 448 Price: ₹ 410/-

Glory of Lord Jagannatha (Part I and II)

श्रीपुरुषोत्तम (जगन्नाथ) क्षेत्रमाहात्म्यम्

A beautiful and lucid verse-to-verse English translation of 'Sri Purushottam (Jagannatha) Kshetra Mahatmyam' as given in Sri Skanda Mahapurana by H.H. Sri Swami Nirliptanandaji Maharaj, delightfully delineating the divine glories of Lord Sri Jagannatha and His sacred abode

मैं इसका उत्तर दूँ? (स्वामी शिवानन्द) प्रथम हिन्दी संस्करण : २०२० Pages: 184 Price: 130/-

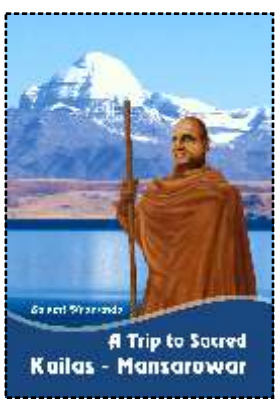

First Edition - 1932
Second Edition - 2020

A Trip to Sacred Kailas – Mansarowar

An inspiring spiritual travelogue by Worshipful Gurudev Sri Swami Sivanandaji Maharaj beautifully describing his journey and experiences during Sacred Kailas – Mansarowar Yatra undertaken in 1931

Pages: 64 Price: ₹ 30/-

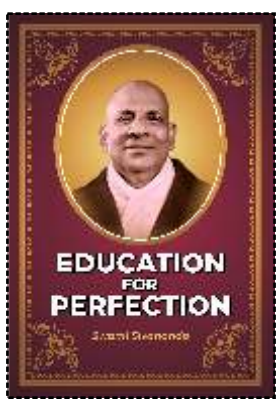

First Edition - 1954
Second Edition - 2020

Education for Perfection

A soul-elevating address of Worshipful Gurudev Sri Swami Sivanandaji Maharaj at the University of Roorkee enlightening the youth of India on true meaning of education

Pages: 40 Price: ₹ 25/-

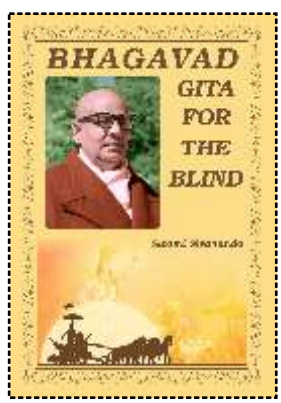

First Edition - 1957
Second Edition - 2020

Bhagavad Gita for the Blind

The quintessence of Srimad Bhagavad Gita in the most simple and lucid language by Worshipful Gurudev Sri Swami Sivanandaji Maharaj

Pages: 48 Price: ₹ 30/-

बीस महत्त्वपूर्ण आध्यात्मिक नियम

(परम श्रद्धेय श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज)

१. **ब्राह्ममुहूर्त-जागरण**—नित्यप्रति प्रातः चार बजे उठिए। यह ब्राह्ममुहूर्त ईश्वर के ध्यान के लिए बहुत अनुकूल है।

२. **आसन**—पद्मासन, सिद्धासन अथवा सुखासन पर जप तथा ध्यान के लिए आधे घण्टे के लिए पूर्व अथवा उत्तर दिशा की ओर मुख करके बैठ जाइए। ध्यान के समय को शनैः-शनैः तीन घण्टे तक बढ़ाइए। ब्रह्मचर्य तथा स्वास्थ्य के लिए शीर्षासन अथवा सर्वांगासन कीजिए। हलके शारीरिक व्यायाम (जैसे टहलना आदि) नियमित रूप से कीजिए। बीस बार प्राणायाम कीजिए।

३. **जप**—अपनी रुचि या प्रकृति के अनुसार किसी भी मन्त्र (जैसे '**ॐ**', '**ॐ नमो नारायणाय**', '**ॐ नमः शिवाय**', '**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**', '**ॐ श्री शरवणभवाय नमः**', '**सीताराम**', '**श्री राम**', '**हरि ॐ**' या गायत्री) का १०८ से २१,६०० बार प्रतिदिन जप कीजिए (मालाओं की संख्या १ और २०० के बीच)।

४. **आहार-संयम**—शुद्ध सात्त्विक आहार लीजिए। मिर्च, इमली, लहसुन, प्याज, खट्टे पदार्थ, तेल, सरसों तथा हींग का त्याग कीजिए। मिताहार कीजिए। आवश्यकता से अधिक खा कर पेट पर बोझ न डालिए। वर्ष में एक या दो बार एक पखवाड़े के लिए उस वस्तु का परित्याग कीजिए जिसे मन सबसे अधिक पसन्द करता है। सादा भोजन कीजिए। दूध तथा फल एकाग्रता में सहायक होते हैं। भोजन को जीवन-निर्वाह के लिए औषधि के समान लीजिए। भोग के लिए भोजन करना पाप है। एक माह के लिए नमक तथा चीनी का परित्याग कीजिए। बिना चटनी तथा अचार के केवल चावल, रोटी तथा दाल पर ही निर्वाह करने की क्षमता आपमें होनी चाहिए। दाल के लिए और अधिक नमक तथा चाय, काफी और दूध के लिए और अधिक चीनी न माँगिए।

५. **ध्यान-कक्ष**—ध्यान-कक्ष अलग होना चाहिए। उसे तालेकुंजी से बन्द रखिए।

६. **दान**—प्रतिमाह अथवा प्रतिदिन यथाशक्ति नियमित रूप से दान दीजिए अथवा एक रुपये में दस पैसे के हिसाब से दान दीजिए।

७. **स्वाध्याय**—गीता, रामायण, भागवत, विष्णुसहस्रनाम, आदित्यहृदय, उपनिषद्, योगवासिष्ठ, बाइबिल, जेन्दअवस्ता, कुरान आदि का आधा घण्टे तक नित्य स्वाध्याय कीजिए तथा शुद्ध विचार रखिए।

८. **ब्रह्मचर्य**—बहुत ही सावधानीपूर्वक वीर्य की रक्षा कीजिए। वीर्य विभूति है। वीर्य ही सम्पूर्ण शक्ति है। वीर्य ही सम्पत्ति है। वीर्य जीवन, विचार तथा बुद्धि का सार है।

९. **स्तोत्र-पाठ**—प्रार्थना के कुछ श्लोकों अथवा स्तोत्रों को याद कर लीजिए। जप अथवा ध्यान आरम्भ करने से पहले उनका पाठ कीजिए। इससे मन शीघ्र ही समुन्नत हो जायेगा।

१०. **सत्संग**—निरन्तर सत्संग कीजिए। कुसंगति, धूम्रपान, मांस, शराब आदि का पूर्णतः त्याग कीजिए। बुरी आदतों में न फँसिए।

११. **व्रत**—एकादशी को उपवास कीजिए या केवल दूध तथा फल पर निर्वाह कीजिए।

१२. **जप-माला**—जप-माला को अपने गले में पहनिए अथवा जेब में रखिए। रात्रि में इसे तकिये के नीचे रखिए।

१३. **मौन-व्रत**—नित्यप्रति कुछ घण्टों के लिए मौन-व्रत कीजिए।

१४. **वाणी-संयम**—प्रत्येक परिस्थिति में सत्य बोलिए। थोड़ा बोलिए। मधुर बोलिए।

१५. **अपरिग्रह**—अपनी आवश्यकताओं को कम कीजिए। यदि आपके पास चार कमीजें हैं, तो इनकी संख्या तीन या दो कर दीजिए। सुखी तथा सन्तुष्ट जीवन बिताइए। अनावश्यक चिन्ताएँ त्यागिए। सादा जीवन व्यतीत कीजिए तथा उच्च विचार रखिए।

१६. **हिंसा-परिहार**—कभी भी किसी को चोट न पहुँचाइए **(अहिंसा परमो धर्मः)**। क्रोध को प्रेम, क्षमा तथा दया से नियन्त्रित कीजिए।

१७. **आत्म-निर्भरता**—सेवकों पर निर्भर न रहिए। आत्म-निर्भरता सर्वोत्तम गुण है।

१८. **आध्यात्मिक डायरी**—सोने से पहले दिन-भर की अपनी गलतियों पर विचार कीजिए। आत्म-विश्लेषण कीजिए। दैनिक आध्यात्मिक डायरी तथा आत्म-सुधार रजिस्टर रखिए। भूतकाल की गलतियों का चिन्तन न कीजिए।

१९. **कर्तव्य-पालन**—याद रखिए, मृत्यु हर क्षण आपकी प्रतीक्षा कर रही है। अपने कर्तव्यों का पालन करने में न चूकिए। सदाचारी बनिए।

२०. **ईश-चिन्तन**—प्रातः उठते ही तथा सोने से पहले ईश्वर का चिन्तन कीजिए। ईश्वर को पूर्ण आत्मार्पण कीजिए।

यह समस्त आध्यात्मिक साधनाओं का सार है। इससे आप मोक्ष प्राप्त करेंगे। इन नियमों का दृढ़तापूर्वक पालन करना चाहिए। अपने मन को ढील न दीजिए।

Registrar of Newspapers for India
No. 71610/1999

Postal-Registration No. TRI/005/2018-20

अप्रैल – अगस्त
२०२०

LICENSED TO POST WITHOUT PREPAYMENT
(Licence No. WPP No. 02/18-20, Valid upto: 31-12-2020)
Posted at Shivanandanagar, Tehri-Garhwal, Uttarakhand
DATE OF POSTING : 20TH OF EVERY MONTH:
P.O. SHIVANANDANAGAR—249192

गुरु और शिष्य

सूर्य कमल से बहुत दूर रहता है, तो भी प्रात: काल सूर्योदय होते ही कमल खिल उठता है। अपने से बहुत दूर रहने पर भी चन्द्रमा के उदय के साथ-ही-साथ उसे देख कर कुमुदिनी प्रफुल्लित हो जाती है। मोर से बहुत दूर मेघ रहते हैं, फिर भी मेघ को देखते ही मोर हर्ष से नाच उठते हैं। इसी प्रकार, दो घनिष्ठ मित्र भले ही परस्पर कितनी ही दूर रहें, फिर भी अपनी मैत्री और स्नेह-सूत्र में वे आबद्ध ही रहते हैं। दूरी कोई बन्धन या बाधा नहीं है। गुरु और शिष्य भले ही बहुत दूर-दूर रहें, तब भी गुरु अपनी बलवती आध्यात्मिक विचार-लहरियों के द्वारा शिष्यों का मार्ग-दर्शन कर सकते हैं।

यह संसार बड़ा विचित्र है। यहाँ हमें बहुत-सी बातें सीखनी होती हैं। जो शिष्य आज अपने गुरु का परम भक्त है, वही आगे चल कर हो सकता है, अपने गुरु को ही हानि पहुँचाने का प्रयत्न करे। प्रगतिशील साधक के सामने पग-पग पर कई बाधाएँ उपस्थित होती हैं। इनसे उसकी आत्म-शक्ति विकसित होती और उसका मनोबल तथा सहिष्णुता दृढ़ होती है। जब कभी विपरीत स्थिति उत्पन्न होती है, तब साधक को अपनी अन्त:शक्ति से काम लेना पड़ता है। उसे इस प्रकार रहना होता है मानो कुछ हुआ ही नहीं।

आपका कोई गुरु नहीं है तो आप ईश्वर को, भगवान् कृष्ण, भगवान् शिव अथवा भगवान् राम को ही अपना गुरु मानिए। उनका ही भजन, ध्यान और स्मरण कीजिए। वे आपके पास योग्य गुरु को भेज देंगे। प्रारम्भ में किसी सशरीर गुरु की आवश्यकता होती है। भगवान् ही गुरुओं के गुरु हैं। वही आपको भगवत्प्राप्ति का मार्ग बतलायेंगे तथा मार्ग की बाधाओं और अड़चनों को दूर करेंगे।

—स्वामी शिवानन्द

सेवा में

'द डिवाइन लाइफ ट्रस्ट सोसायटी' की ओर से स्वामी अद्वैतानन्द द्वारा 'योग-वेदान्त फारेस्ट एकाडेमी प्रेस, पो. शिवानन्दनगर, जि. टिहरी-गढ़वाल, उत्तराखण्ड, पिन २४९१९२' से मुद्रित तथा 'द डिवाइन लाइफ सोसायटी मुख्य कार्यालय, पो. शिवानन्दनगर, जि. टिहरी-गढ़वाल, उत्तराखण्ड, पिन २४९१९२' से प्रकाशित। फोन : ०१३५-२४३००४०, २४३११९०
E-mail: generalsecretary@sivanandaonline.org ; Website : www.sivanandaonline.org ; www.dlshq.org
सम्पादक : स्वामी निर्लिप्तानन्द